की कातर प्रार्थना अभी तक ज्यों-की-त्यों हृदय पर अंकित थी। मैं अपने को भूल गया। अपनी स्थिति भूल गया। स्थान, काल सब भूल गया, और दौडकर उस युवक का हाथ पकड़ लिया। युवक झिझका, और ठहर गया। उसने हाथ छुडाते हुए कहा—"मेरा हाथ छोड़ दो, मैंने क्या किया है ?"

मैंने चौराहे पर खड़े पुलिस सिपाही को बुलाते हुए कहा—"पुलिस के हवाले करने के बाद कहूँगा कि तुमने क्या किया है। बदमाश एक भिखारिनी गरीब औरत को छेडता है।"

युवक—"मैंने उसे छेडा ? मैं तो उसे पैसा देने जा रहा था। था। मेरे साथी उससे जरूर मज़ाक कर रहे थे। मैंने उससे कुछ नहीं कहा। आप उससे पूछ सकते हैं।"

कापुरुष काँपने लगा। उसके साथी पास ही गलियों मे गायब होने लगे। पुलिसवाला तेजी से आ रहा था। भिखारिनी ठिठकी खड़ी थी।

युवक गिडगिडाने लगा। इधर-उधर के आदमी भी आकर जमा हो गए। लखनऊ चौक के क़रीब बात-की-बात मे भीड इकट्ठा हो जाना कुछ मुश्किल बात नहीं है।

युवक—"साहब, मुझे छोड दें, आप उस भिखारिन से पूछ लें। मैने उसे नहीं छेडा। रसूल पैगंबर की कसम है, मैने कोई बेअदबी नहीं की।"

दर्शकों मे से एक ने कहा—"हुजूर, छोड दें। गरीब को सताने से क्या फायदा ?"

मैं—"यह बदमाश गरीब औरत की बेइज्ज़ती करता है, छोड़ कैसे दें ?"

दूसरा दर्शक—"आप भिखारिन से खुद पूछ लीजिये, अगर वह कहे कि इसने कुछ गुस्ताखी की है, तब इसको पुलिस के हवाले कीजिये, वरना छोड़ दें। इंसाफ होना चाहिए।"

मैंने डपटकर कहा—"चुप रहो, मैंने अपनी आँखों से देखा है, यह शख्स बराबर उसे छेड़ रहा था।"

पुलिस का सिपाही पास आ पहुँचा। युवक कांपने लगा।

इतने ही में पूर्व-परिचित मीठे स्वर ने कहा—"साहब, इसको छोड़ दें, मेरे कहने से छोड़ दें।"

मैंने देखा, भिखारिन सामने खड़ी थी। उसके मुख पर करुणा, दया और क्षमा की छाप थी। उसके नेत्रों में अब भी आँसू भरे हुये थे। शायद वे क्षमा के थे।

मैंने भिखारिनी से पूछा—"मा, क्या इसने तुम्हारा अपमान नहीं किया ?"

भिखारिनी—"मैं पहचानती नहीं। मैं ठीक नहीं कह सकती। किया होगा। मैं क्षमा करती हूँ। अनाथों की रक्षा भगवान् करते हैं। संसार मेरा अपमान करता है। अपमान को देखूँ, तो खाऊँ क्या ? मैं नहीं जानती कि यह मुसलमान हैं, नहीं तो मैं इनसे कुछ न माँगती। अभी लडकपन है। जब बडे होंगे, तब सब समझने लगेंगे। आप मेरी वजह से इन्हे पुलिस के हवाले न करें, नहीं तो इनके माता-पिता को कष्ट होगा। मा का हृदय

रोएगा, और उसका शाप मेरे ऊपर जायगा। आप छोड दीजिये।"

भिखारिनी के नेत्रों से आँसू ढलकने लगे। मैं अवाक् था। भिखारिनी के शब्द अब भी मेरे कानों मे गूँज रहे थे। उसकी मँजी हुई जबान और उसका महान् हृदय उसे साधारण भिखारियों की श्रेणी से अलग कर रहे थे। युवक लज्जित होकर पृथ्वी की ओर देख रहा था।

युवक किसी स्कूल का विद्यार्थी विदित होता था। उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—"वाकई मै अपनी गलती पर नादिम हूँ। मुझे मुआफ़ कीजिये। आज से हर्गिज किसी को न सताऊँगा। पाक कुरआन की कसम खाकर हजार दफे तौबा करता हूँ।"

पुलिस वाले ने सलाम करते हुए कहा—"क्या मामला है हुजूर?"

मैं अब बडे असमंजस मे पड़ा। मैंने अपने हृदय से प्रश्न किया—"क्या युवक को छोड़ दूँ?"

हृदय ने कहा—"छोड दो। युवक अपना अपराध स्वीकार करता है। इतनी सजा बहुत है।"

युवक का हाथ छोड़ते हुए मैंने कहा—"जाओ!"

इसी समय पुलिस-सब-इंसपैक्टर बाबू करमचद भी आ गए। मुझे देखते ही बडे तपाक से सलाम किया, और पूछा—"क्या मामला है डॉक्टर साहब?"

मैंने आदि से अंत तक सारा मामला कह दिया, और कहा—

"आप इसका सब पता, नाम वगैरह दर्याफ्त कर लें, ताकि आयदा अगर जरूरत पड़े, तो काम आवे।"

मिस्टर करमचंद उससे नाम वगैरह पूछने लगे। पुलिसइंस्पेक्टर को देखते ही भीड़ खिसकने लगी थी। मैं भीड़ से बाहर निकला। एक ताँगे पर बैठते हुए कहा—"मि० करमचंद अब मैं जाता हूँ।"

मि० करमचंद—"जाइए, आपकी 'कार' कहाँ है?"

मैं—"रास्ते में कार बिगड़ गई थी, उसे बनवाने के लिये भेजा है। आपने नाम वगैरह सब पूछ लिया?"

मि० करमचंद—"जी हाँ, आप नवाबजादे हैं।"

मैं—"आजकल के जमाने में नवाबजादे ही ऐसी नाजायज़ हरकतें किया करते हैं।"

मि० करमचंद ने फिर सलाम किया। मैंने सलाम का जवाब देकर ताँगा बढ़ाने को कहा। ताँगा आगे बढ़ा। थोड़ी दूर पर वही भिखारिनी खड़ी थी। मैंने ताँगा रोकने को कहा। ताँगा ठहर गया। जेब से एक रुपया निकालते हुए कहा—"मा, यह लो। आज से अगर कोई तुम्हें तंग करे, तो फौरन पुलिस से कहो।"

भिखारिनी ने कृतज्ञ दृष्टि से मेरी ओर देखा। वह दृष्टि मैं अभी तक नहीं भूल सका हूँ। उसकी नजरों में कैसी दीनता थी! कैसा भोलापन था! कैसा दर्द था! मैं नहीं समझता, कैसे लोग उस गरीब को छेड़ने का साहस करते थे। उसमें सौंदर्य था, लेकिन उसमें वह सादगी थी, जो हृदय में भक्ति उत्पन्न करती

थी। उसके मुख पर वह करुणा थी, जा दिल में दर्द पैदा करती थी। उसके मुख से छिपी आह बाहर निकल रही थी, जिसको देखकर हृदय आप-से-आप द्रवीभूत हो जाता था। उसकी झिझक, उसकी भापा, उसका असाधारण वेप, सब उसे साधारण भिखमङ्गों की कोटि से पृथक् कर रहे थे। साफ जाहिर होता था कि दरिद्रता की कृपा से मजबूरन उसे यह पेशा अख्तियार करना पड़ा था। मेरे हृदय में आया कि मैं उसका पता-ठिकाना सब पूछ लूँ। उसके रहने का प्रबन्ध कर दूँ, लेकिन वह वक्त, पूछने का नहीं था। ससार क्या समझेगा? संसार क्या जानेगा, मैं यह सब क्यों पूछता हूँ? वह तो पाप लगावेगा। पापमय ससार में पाप के अतिरिक्त क्या और किसी अन्य वस्तु की आशा की जा सकती है?

भिखारिनी ने कुछ नहीं कहा। उसने अपने मन का भाव शब्दों द्वारा नहीं प्रकट किया। उसने झिझकते हुये हाथ से रुपया ले लिया और करुण कृतज्ञ-दृष्टि से मेरी ओर देखा। मेरा सिर आप से आप नीचा हो गया। मैंने ताँगे वाले से कुछ नहीं कहा, लेकिन उसने ताँगा बढ़ा दिया। हजरतगज की ठडी हवा ने मेरे विचारों को कुछ शांति दी। मैंने अपने मन से प्रश्न किया—"क्यों, भला वह कौन थी?"

मन ने उत्तर दिया—"एक साधारण भिखारिनी।"

[२]

महीनों बीत गये। मैंने फिर उस भिखारिनी को नहीं देखा। उसको ढूँढ़ने के लिये कई बार शहर मे घूमने गया, लेकिन कहीं भी उसका पता नहीं लगा। मैंने अपनी स्त्री से भी उस दिन का सब हाल कहा था। उसके कोमल हृदय पर भी प्रभाव पडा। उसने कई बार स्वय पूछा "कहो, कुछ पता लगा?" मै सदैव यही कहता—"अभी तक तो नहीं लगा। यह भी नहीं जानता कि वह लखनऊ मे है, या चली गई। जहाँ तक मैं समझता हूँ, शायद चली ही गई। लखनऊ ऐसी भद्दी जगह में उसका गुजारा नहीं था।"

धीरे धीरे एक साल बीत गया। भिखारिनी का अब भी कुछ पता न था। एक दिन मैंने मि० करमचद को भी बुलाकर उसका पता लगाने को कहा। पहले मि० करमचद ने मेरी ओर हँसती हुई नजरों से देखा। मैं उनका आशय समझ गया।

मैंने उनसे कहा—"मि० करमचंद, क्या आप मेरे बारे मे किसी बात की शका करते है?"

मि० करमचद ने कहा—"नहीं डाक्टर साहब, यह बात नहीं है। मै जानता हूँ कि आपकी नियत साफ है, लेकिन मैं हँसा सिर्फ इसलिये कि आपने अभी दुनिया नहीं देखी। कौन कह सकता है कि वह भिखारिन कैसी थी? कौन जाने, वह अब तक किसी छज्जे पर बैठने लगी हो? जिसकी आप तलाश करना चाहते हैं, वह आराम से ऐश करती हो? उसके रूप का क्या

कुछ मूल्य ही नहीं था ? उसके पाने के लिये तो लोग हजारों रुपये खर्च करने को तैयार होंगे ।"

मैंने उसकी बात काटकर कहा—मि० करमचद, मुझे विश्वास नहीं होता कि वह नीचे गिर जायगी। अगर उसे यही करना होता, तो भीख क्यों माँगती ?"

मि० करमचद—"भीख माँगते-माँगते उसकी आत्मा की महत्ता नष्ट हो गई होगी। माँगना सबसे बड़ा पाप है। इसके अलावा जहाँ वह जाती होगी, वहीं पर लोग उसे छेडते होंगे। उसे जरूर मालूम हो गया होगा कि मैं सुन्दरी हूँ, तभी तो ससार मेरी ख्वाहिश करता है। इतनी जानकारी ही पाप-मार्ग की ओर घसीटती है। जहाँ मनुष्य को मालूम हुआ कि मै सुन्दर हूँ, वह पाप की ओर बढ़ने लगता है। वहीं से उसका पतन आरभ होता है। Arch Bishop Whately ने कहा है—'Honesty is the best policy but who works upon that principle is not an honest man' (ईमानदारी सबसे अच्छा गुण है, लेकिन जो मनुष्य इस ध्येय पर काम करता है, वह ईमानदार मनुष्य नहीं है) ।"

मैं—"हाँ, लेकिन यह सबके विषय में लागू नहीं हो सकता। भिखारिनी मे एक खास बात थी। वह क्या थी, मैं नहीं कह सकता—लेकिन एक असाधारण बात थी, जो आपकी बात न मानने के लिये मुझे बाध्य करती है।"

मि० करमचद—"आप मेरी बातो से यह कदापि न समझिये कि वह उस नीचे गड्ढे मे गिर गई है, जिसको हम लोग

चरित्र-हीनता कहते है, मेरा मतलब सिर्फ यही था कि ऐसा होना कोई असभव बात नहीं है। आजकल के ज़माने मे कौन ऐसे भीख देगा? उसके पास रूप था, यौवन था, वह उसे सहज ही बेच सकती थी, और फिर लखनऊ मे वेश्याओं ने जो जाल फैला रक्खा है, उससे बचकर निकल जाना, उनके प्रलोभनों मे न आना, अवश्य एक असाधारण बात होगी। क्या चौक की वेश्याओ ने उसे अपने पेशे के प्रलोभन न दिये होंगे? कौन कह सकता है कि वह उन प्रलोभनों मे नहीं फँस गई?"

मैं—"मि० करमचद, आप बड़े निराशावादी मालूम होते है।"

मि० करमचद—"मै निराशावादी नहीं हूॅ, लेकिन हर बात की हर सिम्त देखता हूॅ।"

मैं—"लेकिन मैं कहता हूॅ, वह भिखारिनी कदापि इतने नीचे नहीं गिर सकती। मुमकिन है वह गोमती मे डूब मरी हो, लेकिन वेश्या-वृत्ति कभी अवलबन नहीं कर सकती।

मि० करमचद—"ईश्वर करे, आपकी बात सच हो। मैंने लखनऊ का एक-एक छज्जा देख लिया है, लेकिन उसको अभी तक नहीं देखा। डाक्टर साहब, वाकई मैं भी उस दिन से ही उससे मिलने के लिये इच्छुक हूॅ। उसकी भोली दृष्टि अभी तक मेरे दिल मे चुभी हुई है। मैंने उस दिन से फिर उसे लखनऊ में नही देखा। मैने साल भर उसकी खोज की, लेकिन उसे नहीं पाया। मुझे विश्वास है कि वह लखनऊ छोड़कर चली गई।"

मैं—"मुझे भी यही मालूम होता है। वक्त-बे-वक्त मैंने लखनऊ की गलियाँ छानीं, लेकिन उसका पता नहीं पाया। सोचा कि बगैर आपकी सहायता के पता नहीं लगेगा, लेकिन आप भी साफ इनकार कर रहे हैं।"

मि० करमचद—"मैं खुद उसकी खोज में हूँ, जहाँ पता लगा फ़ौरन आपको इत्तिला दूँगा।" यह कहकर उन्होंने जाने की इच्छा प्रकट की।

मैं—"मि० करमचंद, मैं आपके शहर में थोडे ही दिन का मेहमान हूँ। जल्दी ही मेरी बदली होने वाली है।"

उन्होंने बैठते हुए कहा—"कहाँ जाइएगा ?"

मैं—"शायद मथुरा भेजा जाऊँ। मि० रायन छुट्टी पर जा रहे हैं, उन्हीं की जगह मै भेजा जाऊँगा।

मि० करमचंद—"आपके जाने से लखनऊ की बड़ी क्षति होगी।"

मैंने हँसते हुए कहा—"वाह ! लखनऊ की क्या क्षति होगी ?"

मि० करमचंद—"एक सहृदय व्यक्ति की।"

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—"वाह साहब ! आप क्या कम सहृदय हैं ? पुलिस मे रहकर सहृदय होना अवश्य एक प्रशंसा-जनक बात है।"

मि० करमचंद—"अच्छा जब आप मथुरा जा रहे हैं, तब शायद आपको उस भिखारिनी का पता लग जाय। मुमकिन है. वह किसी तीर्थ-स्थान मे गई हो।"

मै—"ईश्वर करे, ऐसा ही हो। अगर वहाँ पर उसकी कुछ भी खबर लगी, तो मै फौरन आपको पत्र लिखूँगा।"

मि० करमचन्द हाथ मिला कर चले गये। मै अपने कमरे में बैठा रहा। सोचने लगा—"क्या वास्तव में वह लखनऊ छोड़ कर चली गई? लेकिन मैं ही क्यों उससे मिलने के लिये इतना उतावला हूँ। गई, तो जाने दो। मेरा क्या बिगड़ा?"

इसी समय मेरी स्त्री ने आकर कहा—"क्यो कुछ, पता लगा?"

मैं—"यह तो बताओ, तुम्हे क्यों इतनी उत्सुकता है?"

मेरी स्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—"क्योंकि उसके रूप ने तुम्हारा मन मोह लिया है।"

मैं चौक पडा। मेरा हृदय धक से हो गया। अपनी स्त्री के मुख से यह बात सुनकर मुझे मालूम हुआ, शायद उसकी बात सच है। मैंने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। वह धीरे-धीरे मुस्कराती रही।

थोडी देर बाद उसने कहा—"मुझे तुम पर पूरा विश्वास है। क्या तुम नाराज हो गये?" मैने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया, वैसे ही चुप बैठा रहा।

[३]

इस घटना को बीते एक वर्ष और हो गया। मैं आजकल मथुरा मे हूँ। मि० रायन सिविल-सर्जन की जगह पर मैं आजकल कार्य करता हूँ। आजकल काम का इतना झंझट है कि ज़रा

भी अवकाश नहीं मिलता। यद्यपि मै रात-दिन काम मे जुटा रहता हूँ, लेकिन अब तक उस भिखारिनी को नहीं भूल सका। उसकी आह-भरी चितवन ज्यों-की त्यो हृदय-पटल पर अकित है। जभी फुरसत मे बैठता हूँ, तभी उसका खयाल आ जाता है। ज्यों-ज्यो उसको भूलने की चेष्टा करता हूँ, त्यों-त्यो उसका चित्र मेरे मन पर उज्ज्वल हो जाता है। अपनी स्त्री से मै आजकल उसके सबध में कुछ नहीं कहता। न कहने का कोई विशेष कारण नहीं था, लेकिन कहने का साहस न होता था। मुझे सदैव यही डर लगा रहता था कि कहीं वह सचमुच समझने न लग जाय कि मेरा उस पर प्रेम है। मेरा हृदय यहाँ तक दुर्बल हो गया था कि कभी-कभी मुझे मालूम होता कि शायद वास्तव में मै उसके रूप पर मुग्ध हूँ। अगर मुग्ध नहीं हूँ, तो उसकी याद क्यो नहीं भूलती? जीवन मे सैकड़ों भिखारिनों को देखा है, लेकिन याद किसी की भी नहीं। इसी भिखारिनी की स्मृति क्यों इतनी सजग है? हृदय उत्तर देता, उसकी असहाय दशा। किंतु मैंने तो उससे भी दीन दशा मे लोगों को देखा है, फिर उनकी याद क्यो नहीं? इसी भिखारिनी की याद क्यो अभी तक बनी है? हृदय उत्तर देता, क्योंकि आज तक तुमने एक असाधारण सुन्दरी को भीख मांगते नहीं देखा, तुम्हारे जीवन में यह एक असाधारण घटना है, इसीलिए उसकी इतनी याद है। तो क्या वास्तव मे मै उसको उसके रूप के कारण ही याद करता हूँ? हृदय कहता— बेशक। तो क्या मैं उसके रूप पर मुग्ध हूँ? यह बात हृदय मानने

के लिये तैयार न होता, किंतु ज्यो-ज्यो दिन वीतने लगे, त्यों-त्यों मै उसकी स्मृति जवरदस्ती भुलाने की कोशिश करता था। जहाँ उसकी याद आई, तुरंत अपनी स्त्री के पास जाकर उससे वातें करने लगता, और उसके भुलाने की चेष्टा करता। ऐसी वातों से मेरे हृदय की दुर्वलता का साफ पता चलता था, लेकिन क्या करता? इसके अतिरिक्त उसके भुलाने का तो और उपाय ही नहीं था।

सध्या हो गई थी। मै अपने वङ्गले के वरामदे मे वैठा हुआ सिगार पी रहा था। मेरी गोद में मेरा वड़ा लड़का अरुण वैठा हुआ खेल रहा था। मैं कुछ अन्यमनस्क था। वार-वार मै उसको भुलाने का यत्न कर रहा था। अरुण मेरी जेव से वार-वार घडी निकालता, और वार-वार फिर जेव में डालता। जेव मे कुछ पैसे भी पडे थे। अरुण ने अव की वार वहुत-से रुपये-पैसे निकाल लिये। मैंने कहा—"अरुण, रुपए डाल दो, पैसे ले लो।"

अरुण ने कहा—"नहीं, मै रुपए भी लूँगा, पैसे भी लूँगा।"

मैं—"क्यों रुपए लेकर क्या करोगे?"

अरुण—"रुपए और पैसे दोनों भिखारियों को दूँगा। वावूजी, जव तुम चले जाते हो, तव वहुत-से भिखारी आते हैं। जव तुम रहते हो, तव कोई नहीं आता। क्यों वावूजी, तुमसे क्या सव डरते हैं?"

मैं—"सव कहाँ डरते है? तुम तो नहीं डरते।"

अरुण ने मेरे चश्मे पर हाथ लगाते हुए कहा—"मैं क्यों डरूँ तुम तो मेरे बाबूजी हो। तुम हमें कब मारते हो? हाँ, अम्मा से डर मालूम होता है। वह कभी-कभी मार देती हैं। बाबूजी, क्या तुम भी अम्मा से डरते हो? मैंने तो कभी अम्मा को तम्हे मारते नहीं देखा, फिर तुम क्यों डरते हो? तुम तो बड़े हो।"

अरुण की बातें सुनकर मैं अपनी हँसी रोक न सका।

मुझे हँसते देखकर अरुण सकुचा गया। मेरे हृदय पर अपना सिर रखते हुये बोला "तुम क्यों हँसते हो बाबू जी, बहुत ज्यादा हँसना अच्छा नहीं होता। अम्मा ने कई दफे मना किया है।" मैंने अपनी हँसी रोकते हुये पूछा--"तुम्हे मना किया है कि हमें?"

अरुण—"हाँ, भूल गया था। तुम तो बडे हो। अच्छा बाबूजी, जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, तब क्या अम्मा हमें भी न मारे-डाटेगी?"

मैंने अरुण का मुख चूमते हुए कहा—"नहीं, तब न मारेगी।"

अरुण—"क्यो बाबूजी, यह भिखारी क्या बड़े ग़रीब है? जैसे हम रहते है, क्या वे लोग वैसे नहीं रहते?"

मैं—"नहीं, अगर उनके पास खाने को और रहने को हो, तो भीख क्यों मांगें।"

मुझे भिखारिनी का फिर ख्याल हो आया। आह! उसे किसी तरह नहीं भूल सकता।"

मैं—"हाँ, घर की मालकिन तो तुम्हारी मा ही है। उसी के देने मे मुझे भी मिलता है।"

अरुण चुप हो गया। मेरी स्त्री ने आकर कहा—'बाप बेटो मे क्या बातें हो रही हैं? मेरी ही शिकायत होती होगी।"

मैं—"आपकी शिकायत तो नहीं होती, बल्कि बडाई होती है। तुम अरुण के पैसे क्यो छीन लेती हो?"

मेरी स्त्री ने कहा—"तुम अरुण को पैसे दे-देकर उसकी आदत बिगाड रहे हो। अगर रुपये फालतू हो, तो कुछ मुझे दे दो।"

अरुण अपनी मा को देखते ही मेरी गोदी से उतर कर चला गया।

ज्वा ५ [४]

भिखारिनें, दिन मैं आठ ही बजे अस्पताल चलने लगा। क्यों?
दूसरी ही भिर नहीं दे सकता। रात्रि-भर मैं भिखारिनी के बारे ही
कौन है, जो मैं ा। मन कहता कि यह वही है, लेकिन मैं मानने
मैंने अरुण होता। मैं बराबर कहता कि वह नहीं है। वह कहाँ
अरुण, तुमने उसे ? मन उत्तर देता—"क्यों नहीं आ सकती?
अरुण—"हाँ, पै, कभी यहाँ मांगती है, कभी वहाँ। ससार में
दूँगा। आज मुझे पैसे ह नहीं ठहरते। अगर वही घूमते-घूमते
देती।" दि जुव क्या है।" रात्रि-भर मे ऐसे ही
मैंने अपनी जेब से एक रुपया समय बीत गया था। ससार निस्तब्ध
क्या मैं भिखारिनी की स्मृति-मात्र

था, लेकिन मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मैं लेटा हुआ करवटें बदल रहा था। अकस्मात् मेरी स्त्री ने मुझसे पूछा—"क्यों, अभी तक क्या जाग रहे हो ?" मैंने सो जाने का बहाना किया। उसने फिर पूछा—"क्यों, बोलते क्यों नहीं ? अब आप सोने का बहाना करते हैं! क्यों ? उसी भिखारिनी की याद हो रही है, इसी वजह से नींद नहीं आती!"

उसका यह व्यंग्य मेरे हृदय में तीर-सा चुभ गया। वास्तव में बात यही थी। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि क्यों मैं उसके संबंध में इतना अधिक सोचता था। वह अपने पलंग पर से उठी, और मेरे पास आकर कहा—"बोलते क्यों नहीं ? मुझसे न बनो, मैं सब जानती हूँ।"

मैं आँखें बंद किये लेटा रहा। आँखें बंद होती न थीं। वे बार-बार खुलने का प्रयत्न करती थीं। वह मेरे मुँह की ओर देखने लगी। उसने मेरे मुँह के पास अपना मुख लाकर कहा—"देखो, भिखारिनी खड़ी है।"

मैंने एकदम से उसे अपने बाहु-पाश में बद्ध करते हुए कहा—"तुम भिखारिनी कब से हुई ? मैं तो तुमको अपने हृदय की साम्राज्ञी समझता था।"

उसने अपने को छुड़ाते हुए कहा—"छोड़ो! छोड़ो! यह झूठा, जबरदस्ती का प्रेम मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं अब सम्राज्ञी कहाँ रही अब तो भिखारिनी राजरानी हो गई, और राजरानी भिखारिनी क्यों ? सच कहना, क्या अभी तक उसको नहीं भूल सके हो ?

मेरे मुख की हँसी तिरोहित हो गई। प्रेम का उच्छ्वास कम हो गया। मैंने उसको अपने वक्ष पर लिटाते हुए कहा—"अनू! सच कहो, क्या तुम्हारा मेरे ऊपर विश्वास नहीं?"

उसने अपना सिर रखते हुए कहा—"क्या आज तक कभी मैंने तुम्हारा अविश्वास किया है, जिस दिन मैं तुम्हारा अविश्वास करूँ, भगवान् से प्रार्थना है कि वही मेरे जीवन का अंतिम दिन हो। मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है, लेकिन तुम पर है। यह मैं जानती हूँ कि तुम हमारे हो—और किसी के कभी नहीं हो सकते।"

कहते-कहते उसका गला भर आया। आँखों मे विश्वास के आँसू छलछला आए। मैंने प्रेम के दूने आवेश से उसे अपनी भुजाओं मे बाँध लिया। वह भी सिकुड गई। विश्वास की अंतिम सीमा प्रेम है।

थोडी देर बाद अपना सिर उठाकर पूछा—"क्यों, क्या अभी तक उस भिखारिनी को नहीं भूल सके हो?"

मैंने सकुचित शब्दों मे कहा—"हाँ, अभी तक नहीं भूल सका। अरुण ने आज उसकी याद दिलवा दी है अनू! उस भिखारिनी की दृष्टि में जो करुणा थी, जो दुःख था, जो मौन व्यथा थी, जो आह थी, जो तडप थी, जो पवित्रता थी, जो सादगी थी, उसे मैं नहीं भूला हूँ। मुझे मालूम होता है, ससार मे सबसे दुःखी जीव वही है। मेरा मन कहता है, उसे कोई बडा भारी दुःख है, जिसको वह किसी से कहती नहीं, अपने ही दिलके

पर्दे में छिपाए है। अनू, मै सत्य कहता हूँ, जब मै उसे याद करता तभी उसकी वही मर्मभेदिनी दृष्टि स्मृति-पट पर आकर अङ्कित हो जाती है। उसकी उस दृष्टि मे एक सदेश है, जो कहता है कि मुझ पर दया करो, मैं वहुत दु खी हूँ। मुझे विश्वास है, अगर तुम भी उसे देखतीं, त तुम्हे भी वह हमेशा याद रहती।"

उसने कुछ नहीं कहा। धीरे-धीरे उसने अपना सिर मेरे हृदय पर रख लिया। उसके आलुलायित केश-दाम मेरे चारो तरफ फैल गए उसका हृदय धडक रहा था। मैं चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरने लगा।

सुवह उठकर आठ ही वजे अस्पताल चलने लगा। और दिन की अपेक्षा आज जल्दी जाते देखकर उसने पूछा—"क्यो, आज इतनी जल्दी क्यों? क्या जल-पान भी न करोगे?"

मुझे डर था कि कहीं कल की भिखारिनी न आ जाय, और भाग्य अथवा अभाग्य-वश वही भिखारिनी निकल न आवे।

मैंने कहा—"चाय तो पी चुका हूँ। जल-पान की कुछ ज्यादा जरूरत नही है। आज एक काम है। मेरे लिए आज वैठना नहीं तम खा लेना मै शायद देर करके आऊ।"

उसने सशकित स्वर से पूछा--"कौन काम है? अब भी खाकर नही जाते, और देर करके आने को कहते हो, यह तो ठीक नही है। मै भी कुछ तुन खाऊगी जब, म आओगे, तभी खाऊ गी।"

मैंने रुककर कहा—"यह कोन-सी वात है? मुझे काम है, मै जा रहा हूँ।"

उसने जल-पान की तश्तरी आगे रखते हुए और मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा—"बगैर खाये न जाओ। दो मिनट से देरी न हो जायगी। अब तुम्हें कौन साहब का डर पड़ा है।"

मैं जल-पान करने बैठ गया। उसके हाथों से छूटने का उपाय न था।

किसी तरह जल-पान करके पिंड छुडाया। उसने दो पान देकर मेरी ओर मुस्किराती हुई नजरों से देखा। वह उसकी विजय की हँसी थी। मेरा हृदय पुलकित हो उठा।

मैंने उसका चिबुक उठाकर कहा—"अनू, वास्तव में तुम बडी सुंदरी हो।"

नववधू की तरह वह सकुचाई।

किंतु वह लज्जा थोडी देर की थी। शोखी और शरारत आंखों के दो झरोखों से झांकने लगीं।

उसने ज़रा-सा घूंघट खींचते हुए कहा—"लेकिन तुम्हारी नजरों में वह भिखारिनी तो कहीं सुंदर है।"

मेरा हृदय धडकने लगा, और मुख पर लालिमा दौड गई। लेकिन उसी तरफ हसी का फौवारा छूट पडा। उसने हसते हुए कहा—"चोर की हिम्मत कितनी! क्यों सिविल-सर्जन साहब, नुसखा ठीक है न?"

मैं चुपचाप दरवाजे की ओर बढा। लेकिन उसने जाने नहीं दिया।

मेरा हाथ पकड कर कहा—"आह! जरा-सी देर ठहर जाओ जवाब तो दिए जाओ।"

मैंने रुककर कहा—"मेरी इतनी हिम्मत कहाँ कि आपके सामने मै जवान खोलूँ ?"

उसने जवरदस्ती एक आराम-कुर्सी पर विठाते हुए कहा—"आप किसी तरह भी नहीं जा सकते। अजी, यह तो पहला वार था, पहले ही वार मे वगलें झांकने लगे।"

मेरी हार मेरा बुरा हाल किए हुए थी। मैंने कहा—"तुम्हारा पहला ही वार इतना जवरदस्त होता है कि मात हो जाती है। तुम मजाक की शतरज वडी अच्छी तरह खेलना जानती हो।

उसने एक अजीव अदा से प्रणाम करते हुए कहा—"इस प्रशसा के लिये मैं आपको धन्यवाद देती हू।"

मैंने कुर्सी पर से उठते हुए कहा—"अब तो मेरी अच्छी तरह मरम्मत कर दी; या अभी कुछ वाकी है। ईश्वर के लिये अब तो इजाजत दो। देर हो रही है।

उसने मुस्किराते हुए कहा—"हार का टीका लगवाकर जाते हुए शरम भी नहीं मालूम होती ?

मैंने हसते हुए कहा—"तुमसे हारने ही मे तो मेरी जीत है। ईश्वर करे, तुम हमेशा यो ही जीतो, और मैं हारूँ। औरतो से कौन नहीं हारा ?"

इसी समय वाहर कोई मीठे स्वर मे गा उठा—

"ऊधो ! कर्मन की गति न्यारी।"

मेरी हृत्तंत्री वज उठी। मेरे मुख से वेतहाशा निकल पडा—"वह देखो।"

उसने मुस्किराते हुए कहा—"स्वप्न मे भी विल्ली को छीछडे

ही नजर आते है। यह तो कल भी आई थी। यह आपकी गार का रिनी नहीं है।

इसी समय अरुण ने दौडते हुए आकर कहा—"बाबूजी, कल वाली भिखारिनी आई है।"

[५]

हाँ, यह भिखारिनी वही थी। वही लखनऊवाली। वही मुख था, वही परिचित स्वर, वही करुणा-दृष्टि।

मेरा हृदय उछल उठा उसने भी शायद मुझे पहचान लिया। तभी तो उसकी आँखें नीची हो गई। उसका मुख लाल हो गया। उसने एक भोली और पवित्र दृष्टि से मेरी ओर देखा, और कहा—"बाबूजी, क्या यह आपका लडका है?"

अरुण मेरे पास ही खडा था। मैंने कहा—"तुम यहाँ कैसे? यह कौन है?"

भिखारिनी—"मेरे पूज्य पतिदेव है, और यह लड़का है। बाबूजी, जब से आपने उस दिन लखनऊ मे मेरी रक्षा की है, उस दिन से अकेले भीख माँगने का साहस नहीं हुआ। तब से स्वामी के साथ भीख माँगने निकलती हूँ। यह आप ही का लडका है? क्यों न हो, तभी पिता की प्रवृत्ति पाई है। कल भी मैं भीख माँगने यहाँ आई थी। इन्होंने कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है और अम्मा नहीं देगी। कल आना, मैं बाबू जी से लेकर रख छोड़ूँगा।' सुनकर मेरी आँखो मे आँसू भर आए थे। मेरा जी भी पुलकित हो उठा। इन्हीं के कहने से मै आज फिर आई थी।"

मैंने सामने कहा--"भीतर आओ। इनकी मा तुम से मिलना चाहती है। मैंने लखनऊ में तुम्हारी बहुत खोज करवाई, लेकिन तुम्हारा कहीं पता ही न था।"

मैंने कहने को तो कह दिया, लेकिन पीछे बडी लज्जा मालूम हुई। मैंने यह क्यों कहा ?

भिखारिनी मेरे पीछे-पीछे चलने लगी। एक हाथ से अपने पति का हाथ पकडे थी, और दूसरे से अपने पुत्र का। उसका पुत्र भी अपनी मा के तुल्य ही सुंदर था। भिखारिनी का पुत्र था, लेकिन गंदा नहीं था। भिखारिनी के मुख से एक पवित्र ज्योति निकल रही थी, और उसका पति यद्यपि अंधा था, लेकिन उसके मुख पर भी प्रभा थी।

अरुण की मा दरवाजे पर खडी थी। हम दोनो को आते देखकर वह किंचित् मुस्किराई, और थोडी दूर आगे भी चली आई। पास आकर उसने भिखारिनी के पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया। भिखारिनी 'नहीं-नहीं' करती रही।

उसने उसका मुख चूम लिया, फिर भिखारिनी की ओर देखा। वह उसकी ओर बडे गौर से देखने लगी। धीरे-धीरे उसने उसके पुत्र को अपनी गोद से उतार दिया, और कहा—"कौन—अनसूया ?"

भिखारिनी चौंकी, और उसने मेरी स्त्री की ओर देखा, और कहा "अन्नपूर्णा ?"

मेरी स्त्री और भिखारिनी दोनों लिपट गई। आह ! वह

मिलन कितना अद्भुत था ! पवित्रता और शृंगार का मिलन था !

अरुण की मा ने मेरी ओर देखकर कहा—"तुमने पहचाना नहीं, मेरे विवाह में तो तुमने देखा होगा ?"

मैने भिखारिनी के पति का हाथ एक नौकर के हाथ मे देकर कहा—"जाओ, इन्हे नहलाकर अच्छे कपडे पहनाओ ।"

भिखारिनी का पति बडी हैरत मे था। वह जाने में हिचकिचाहट करने लगा ।

भिखारिनी ने कहा—"यह मेरी सखी का मकान है। अब मै कुछ देर इनके पास बैठूँगी ! आप स्नान कर लीजिए ।"

अंधे भिखारी को कुछ उज्र न हुआ। वह उस नौकर के साथ चला गया ।

अरुण की मा ने उसके पुत्र को गोद मे ले लिया था, और वह मेरे अरुण को गोद मे लिए थी ।

मैने घर के भीतर जाकर कहा—"तुम्हारी शादी मे देखा था, खयाल तो नहीं आता ।"

अरुण की मा—"तुम्हे उस लडकी की याद नहीं है, जिसने तुम्हारे गाल मे गुलाल लगाया था, तुम बहुत बिगडे थे ? जरा याद तो करो ।"

मैने उत्तर दिया—"याद नहीं पडता, बहुत दिन हो गये ।" भिखारिनी का मुख लाल हो गया। उसने सलज्ज कंठ मे कहा—"जी हाँ, बहुत दिन हो गए, करीब दस-बारह वर्ष ।"

अरुण की मा—"हाँ, याद नहीं, नहीं बहन, बनते हैं। दो बरस बराबर तुम्हारे नाम की माला जपी है। ऐसा दिन शायद ही कोई बीता हो, जिस दिन तुम्हारी याद न की हो। क्यो बहन, उस दिन लखनऊ मे तुमने क्या जादू कर दिया था?"

अनसूया झेंप गई। उसने धीरे से अरुण का मुँह चूम लिया।

मैं बाहर चला आया। सोचने लगा—अनसूया! क्या अच्छा नाम है!—और गुण भी पुराणों की अनसूया-जैसे है। न-मालूम किस पाप से यह दुःख भोगने को मिला। सूरदास ने बिल्कुल ठीक कहा है—"ऊधो! करमन की गति न्यारी"—एक सब तरह से सुखी है, और दूसरी पथ की भिखारिनी है। लडकपन मे दोनो साथ खेली है, साथ पढी है, लेकिन कर्मगति भी तो कोई चीज है। यहीं पर तो नास्तिक भी हार जाते है, और कर्म तथा ईश्वर का अस्तित्व मानना पडता है।

अरुण की मा के मुख से अनसूया का हाल मालूम हुआ। अनसूया अनाथ बालिका थी। लडकपन ही मे माता-पिता मर गए थे, लेकिन चाचा ने उसका पालन-पोषण किया था। अनसूया के चाचा के भी सन्तान न थी। अनसूया की चाची की भी मृत्यु हो गई थी, केवल चाचा थे। अनसूया का विवाह अच्छे कुल मे तो किया गया, लेकिन घर निर्धन था। मा-बेटे दो ही मनुष्य थे। अनसूया के पति की आँखे धीरे-धीरे खराब हो रही थीं। निर्धनता के कारण ठीक से इलाज न हो सकता था। उसका पति अधिक

शिक्षित भी न था, क्योंकि धन का अभाव था। आजकल की शिक्षा तो निर्धनों के लिये है ही नहीं।

अनसूया के विवाह के बाद उसके चाचा का भी स्वर्गवास हो गया। उनकी सपत्ति एक दूर के सबधी हड़प गए। अनसूया को एक पैसा भी न मिला। दो-तीन साल बाद उसकी सास भी काल-कवलित हो गई। धीरे-धीरे उसके पतिदेव भी अधे होने लगे, और मा के मरने के बाद ही पूरी आँख मे जाला पड गया। इन दिनों इलाज बराबर होता रहा, लेकिन उससे फायदा कुछ दिखाई नहीं दिया। विवाह के ठीक पाँच वर्ष बाद अनसूया का पति दृष्टि-विहीन हो गया। घर की बची-खुची सपत्ति भी खर्च हो गई। अब खाने के लाले पडने लगे। भिक्षा-वृत्ति के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था। अत मे वही करना भी पडा। पहलेपहल भिक्षा माँगते हुए बडी ग्लानि, बडी शर्म मालूम हुई, लेकिन उसके अतिरिक्त तो और कुछ चारा नहीं था। कई स्कूलों मे अनसूया ने कोशिश की, लेकिन पथ की भिखारिनी को कोई नौकरी भी न मिली। भीख माँगने मे जो लाछना होती थी, वह उसे मौन होकर सहती। इसके बाद ही लखनऊ की घटना घटी। उस दिन से वह अपने साथ अपने स्वामी को लेकर भीख मांगने निकलती। स्वामी साथ होने के कारण कोई भी उसका अपमान न कर सकता था। वह सुरक्षित थी। लखनऊ के बाद वह कानपुर गई, फिर इलाहाबाद और फिर मथुरा जी। मथुरा मे वह तीन महीने से है। यहाँ पर उसे खाने-भर को और कभी-कभी उस से अधिक मिल जाता है

मेरी स्त्री ने कहा—"देखो, अनसूया अब जाने नहीं पाएगी। उसकी रक्षा का भार तुम्हें लेना पडेगा।"

मैंने हँसकर कहा—"एक पथ की भिखारिनी के लिये मेरे घर मे जगह नहीं है।"

वह—"अभी तो उसकी याद मे जान देते थे, और अब ऐसा कहते हो। यह कुछ नहीं हो सकता, वह यहीं रहेगी, और उसके स्वामी की आँखें भी अच्छी करनी होंगी। आँखें अच्छी हो जाने पर उसे कहीं काम से लगा देना होगा। आया समझ मे।"

मै—"जी हाँ, आगया। आप का हुक्म सर-माथे पर। आँख का आपरेशन भी करना पडेगा?"

वह—"चाहे जो कुछ भी करो, लेकिन आँख ठीक करनी पड़ेगी।"

मैंने हाथ जोड कर कहा—"बहुत अच्छा सरकार!"

उसने मेरा हाथ झटक कर कहा—"हाथ जोडो जाकर अपनी भिखारिनी के, मेरे नहीं।"

मैं—"किसके, अनसूया के?"

वह—"नहीं, वह तो मेरी सखी है, किसी और भिखारिनी के, क्या मथुरा में कुछ कमी है?"

मैं—"नहीं, मेरे ही घर मे दो हैं।"

वह—"देखो, आज से कभी उसे भिखारिनी जो कहा, तो मै तुम से बोलूँगी नहीं। याद रखना।"

मैं—"यह सजा न तजवीज की जाय, मैं कहने का कभी

दुस्साहस न करूँगा।"

वह मुस्किराती हुई चली गई। वह उस दिन कितनी प्रसन्न थी।

❀ ❀ ❀

अनसूया के स्वामी का नाम था रामप्रसाद। मैं उनका इलाज करने लगा। आँखों का आपरेशन किया। उनका जाला साफ कर दिया गया, और फिर सी दी गई। धीरे-धीरे आँखें अच्छी होने लगीं। जिस दिन आँखें अच्छी हुईं, उस दिन मैंने रामप्रसाद को अपनी स्त्री और अनसूया के सामने लाकर खडा कर दिया और कहा—"यह लो, अब तो कुछ इनाम मिलना चाहिए।"

मेरी स्त्री की आँखें गर्व और हर्ष से चमक उठीं। अनसूया उठी, और मेरे पैरों में सर रखकर अश्रु-पूर्ण नेत्रों से बोली—"मै तुमको क्या दूँ, पथ की भिखरिनी हूँ। भिखारियों के पास केवल आशीर्वाद होता है। वही देती हूँ। फिर अरुण को गोद में लेकर उसका मुँह चूम लिया, और कहा—'भगवान् से यही प्रार्थना है कि यह मेरा लाल राजराजेश्वर हो। अगर सती के शब्दों में कुछ असर है, तो यह अवश्य होगा।"

यह कहकर उसने अरुण का मुख फिर चूम लिया।

मेरी स्त्री ने कहा—'बस बहन, यही आशीर्वाद दो। हमारा अरुण राजराजेश्वर हो।"

तीज की साड़ी

[१]

कोयल की सुमधुर तान से भी गायत्री का हृदय न खिला। खिलता कैसे, उसमें तो शोक की छाप-सी लगी हुई थी। कोयल–निष्ठुर कोयल—किसी के दुःख को क्या जाने। वह अपने ही सुख से सुखी थी। कूहू-कूहू करती ही गई, उसने तनिक भी गायत्री के मुरझे और दुखी मुख की ओर न देखा, तनिक भी समवेदना नहीं प्रकट की, तनिक भी सहानुभूति न दिखलाई। दिखलाती क्यों? उसे क्या पड़ी थी। कोयल के स्वर से दुखी हो कर गायत्री ने उस की ओर देखा। उस के दुखी हृदय-मंदिर में मीठी तान झंकृत हुई, और अब की बार उसने वेदना-भरी दृष्टि से उस निष्ठुर पक्षी की ओर देखा। उस पीड़ा-पूर्ण तथा स्नेह-भरी चितवन ने हृदय-स्थल की वेदना भोले भाले आँसुओं द्वारा कह दी। कोयल चुप हो गई। गायत्री को कल न थी—वह फिर भावों के अनंत सागर में डूब गई। उस की म्लान दृष्टि में हृदय-कंपित व्यथा निकल रही थी—उसकी निःश्वासों के साथ पाषाण-हृदया वेदना संसार के सम्मुख आकर सुशीतल मलय मारुत को कलुषित कर रही थी।

आम्र-वृक्ष के सामने ही एक साधारण घर था। उसके पास का भग्न स्थान इस बात की साक्षी दे रहा था कि किसी समय में यह एक उच्च प्रासाद-तुल्य अट्टालिका थी। किंतु समय के साथ वस्तु का ह्रास होता ही है। यद्यपि पिछला और आस-पास का हिस्सा स्वच्छ न था, तथापि घर भीतर से पूर्णतया स्वच्छ और निर्मल था। घर में केवल दो कमरे दुर्दैव के प्रकोप से बचे थे। एक मे एक टूटी शय्या थी, उसी पर गायत्री की एकमात्र स्नेह तथा प्यार से पाली हुई पुत्री जाह्नवी लेटी हुई थी।

जाह्नवी बीमार थी। ज्वर था, किंतु सामान्य न था। वह बड़ा भयानक था। बीमार हुए कई दिन बीत गए थे। बालिका ने उपवास भी किए थे। चचला जाह्नवी की सब चपलता तिरोहित हो गई थी। उसको आज तक किसी ने भी सावधान बैठे नहीं देखा था। कभी वह छोटे-छोटे नवजात बछवों के साथ खेलती, कभी बडे प्यार से पोषित हरिणी के साथ दौडती, कभी अपनी वयस्का सखियों के साथ आम-वन के सघन निकुंजों में बाल्य-सुलभ क्रीडाएँ करती, कभी पुष्करिणी के निर्मल नीर मे केलि करती, और कभी कोयल को चिढाने के लिये कूहू-कुहू करती। किंतु जाह्नवी आज असहाय हो शय्या पर मलीन हुई पडी हुई थी। रोज की तरह जाह्नवी के सब मित्र आते, किंतु उसकी असहाय दशा देख चले जाते। हरिणी छलांगें मारती हुई आती, उसको आशा होती कि एक और कोई भी मेरे साथ दौडेगी, किंतु अभागिनी की आशा निराशा में परिणत होती, और वह दुःखी होकर चली जाती। बालिकाएँ आतीं, और सखी को दुःखी देख

रोने लगतीं। और शायद आज कोयल भी बडी साध से, बडी आशाओं को लेकर आई थी, और बडे चाव से, बडी प्रसन्नता से कुहुक रही थी। उसको आशा थी कि कोई उसे चिढाएगा, किंतु किसी ने उसको उत्तर न दिया। कोयल चुप हो गई। जाह्नवी—विकला जाह्नवी उस समय निन्द्रा मे मग्न थी। कोयल को उत्तर कौन देता। किंतु उसकी कुहुक से वह जाग पडी। अब की वह फिर बोली, जाह्नवी ने उसको चिढाने के लिये मुँह खोला, वह साध मन ही मे रह गई, और दुखिनी बालिका न बोल सकी। उसने अपने चारो ओर देखा। वात्सल्य-पूर्ण मा का कातर मुख कहीं न देख पडा। उसकी लबी उसाँसे भी न सुनाई दीं।

बालिका भयभीत हो गई। क्या देखकर भीत हुई, वही जाने, किंतु डर गई अवश्य।

भय-विह्वला बालिका ने पुकारा—"मा, ओ मा!"

जाह्नवी की पुकार गायत्री ने सुनी। उसने उसके पास पहुचकर कहा—"क्या है जाह्नवी! तबियत कैसी है?"

बालिका ने मा को शांति प्रदान करने के लिये कह दिया—"अब तो अच्छी है मा।" गायत्री ने भी सुना। वह अबोध न थी। उसके शुष्क पीले गालो पर आँसू ढुलक पडे। मा को रोते देख जाह्नवी अधीर हो गई, उसने फिर कहा—"मा, रोओ नहीं, तुम्हारे रोने से मुझे दुख होता है।"

जाह्नवी दुखित होगी, यह जान मा रोई नहीं। उसने मलिन-अचल से अपने आँसू पोछ डाले और कहा—"अब न रोऊँगी।"

वह उसके शुष्क वालो को सॅवारने लगी। ज्वर से सिर तप रहा था। हाथ रखना कठिन था, किन्तु मा को कब इसकी परवा है, कब इसकी चिन्ता है।

वालिका ने करवट बदलकर कहा—"मा, बाबूजी की चिट्ठी आई ?"

मा ने निषेध-सूचक सिर हिला दिया। वालिका के मुख से ठंडी आह निकल गई, और दो आँसू निकल कर टुलक पडे।

वालिका ने फिर कहा—"मा, तीज कब है ? क्या अब की वार कपडे मोल न ले दोगी ? शिवू दादा के साथ मै भी नहाने जाऊँगी। जाने दोगी मा ?"

मा ने कन्या की बाल्य-सुलभ वातें सुनीं। न-जाने क्यों उसका हृदय कॉप गया। कौन जाने उस दिन तक उसकी जाह्नवी इस ससार मे रहे या न रहे। दु खिनी का सहारा रहे या न रहे। उसने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—"जाने क्यों न दूँगी वेटी, तुम अच्छी तो हो जाओ।"

वालिका ने पुन कहा—"मैं तो रेशमी साडी लूँगी।"

- वालिका क्या जाने कि उसकी मा के पास यथेष्ट धन है या नहीं। उसकी मा को अब अपनी निर्धनता का ध्यान आया, और अतीत का दृश्य उसके सामने नृत्य करने लगा। उसको रामकृष्ण की वातें याद आने लगीं। अतीत मे एक दिन उसने भी रेशमी साडी माँगी थी, और उसके पति रामकृष्ण ने तुरत ही लाकर उसकी इच्छा पूर्ण कर दी थी। दुर्दैव तथा अभाग्य

से आज वह अपनी परम प्रिय जान्हवी की एक तुच्छ इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ है। उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने उन्हें छोडकर उत्तर दिया—"ले क्यों न दूँगी। तू तो पहले अच्छी हो जा।"

कहने को तो उसने कह दिया। जो वेदना उसे हुई, केवल मा ही अनुभव कर सकती है। वही जानती है, और कोई क्या जाने। दु खी दु:ख को जानता है—सुख से पले हुए नहीं जानते। बालिका मा के मुख की ओर देखने लगी। दृष्टि उसकी बडी कातर थी। उसमें निराशा और दु ख का आभास था, उसने करवट बदली, और आँखें मूँदकर कुछ विचारने लगी। क्या विचारती थी—वही जाने।

[२]

रात्रि कट गई। गायत्री ने समस्त रात जागकर काटी। केवल क्षण-भर के लिये उसकी झपकी लग गई थी, किन्तु उसमें भी उसे तनिक विश्राम न मिला। कल न मिली। शांति न मिली। मिलती कैसे? वह तो अशांति ही लेकर संसार में आई थी।

उसने उस क्षणिक निद्रा में एक भयावह स्वप्न देखा। स्वप्न न था, दु खमय भविष्य की सूचना-मात्र थी। उसने देखा, वह अपनी कुटीर के सामने म्लान मुख से बैठी हुई है। एक भीषणकाय संन्यासी ने आकर उसके सम्मुख अपना भिक्षापात्र करते हुए कहा—"मा, भीख दो।"

गायत्री ने कोई उत्तर न दिया।

उसने फिर कहा—"मा, भीख दो।"

गायत्री ने पूछा—"क्या दूँ?"

सन्यासी ने कहा—"जान्हवी, अपनी कन्या।"

गायत्री अवाक् रह गई। सन्यासी घर मे घुस गया, और सोई हुई जान्हवी को उठाने लगा। गायत्री ने चिल्लाकर कहा—"उसे मत छूना, कहाँ लिये जाते हो, कौन हो?"

गायत्री आगे और न देख सकी। अपने शब्द से वह आप जाग पडी, और पागल की भाँति चारों ओर देखने लगी। उसके माथे पर पसीने की बूँदे झलझला रही थीं। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो सत्य ही सन्यासी उसकी प्यारी जान्हवी को उठा रहा है। हृदय का स्पदन बडे वेग से हो रहा था। शरीर काँप रहा था। साँस बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। मंद दीप के प्रकाश मे स्वप्न स्वप्न मे परिणत हो गया।

गायत्री फिर न सो सकी। सोती कैसे? निद्रादेवी की मधुरिमामयी स्नेह-क्रोड गायत्री के लिये न थी। वह चिंतत थी। चिंतकों के लिये नींद की मीठी थपकियाँ एक दुराशामात्र है। वह मा थी। उसकी एकमात्र कन्या मृत्यु-मुख की ओर अग्रसर हो रही थी। संतान के दु ख मे दु खी मा को नींद! यह कैसे सभव है? उसकी आतरिक व्यथा कोई क्या जाने। दु ख सतान पर नहीं आते, आते हैं वे मा के ऊपर। मा ही उन्हे झेलती है। मा का हृदय ही उस दु ख को जानता है। गायत्री भयभीत हो गई। उसके मुख पर स्वेद की बूँदे झलझला रही थीं। उसने

जान्हवी के मस्तक पर हाथ फेरा। उसमें प्रेम का कितना अटूट स्रोत था, कितना स्नेह था, कितना वात्सल्य था, कोई क्या जाने। जान्हवी जाग पडी। उसने मा की ओर देखा। मा की आँखो मे आँसू भरे हुए थे। आँसू गायत्री के दूत बनकर निकले थे, किंतु वे भी न कह सके। शोक से, दु ख से वे मुरझा गए, और पृथ्वी पर गिरकर उसी मे कहीं छिप गए। मेदिनी ने उन्हे अपने अंक मे छिपा लिया, ठीक उसी भाँति, जिस तरह उसने अतीत मे जनक-नंदिनी सीता को छिपा लिया था, जब वह शोक और दु ख से पागल हुई जा रही थीं।

जान्हवी उद्विग्न हो गई। गायत्री ने अपने आँसू पोछ डाले। उसने बडे प्रेम से जान्हवी का हाथ पकडकर कहा—"दवा खाओगी बेटी ?"

शांतिपुर म एक डाक्टर थे, उनका नाम था मुरारीमोहन। कानपुर के किसी डाक्टर के यहाँ पहले कंपाउडर थे, किंतु अब शांतिपुर मे ही दवाखाना खोलकर डाक्टरी करते है। फीस आपने एक रुपया रक्खी थी, किंतु कभी-कभी दो रुपया तक ले लिया करते थे। सबको पहले आप कुनैन मिक्स्चर दिया करते थे। जान्हवी को भी आज दस दिन वही दवा खाते हुए बीत गए थे। इसी के लिये गायत्री ने पूछा था।

जान्हवी ने कहा—"लाओ, खा लूँ।

गायत्री ने औषधी खिला दी। जान्हवी ने पूछा—"मा, बाबूजी कब तक आवेंगे ?"

मा ने उत्तर दिया—"क्या जानूँ कब तक आवेंगे ?"

बालिका ने फिर पूछा—"कहाँ गये है ?"

मा ने अपने आँसूओ को रोकते हुए कहा—"कालेपानी।"

"कालापानी कहाँ है ?"

"यहाँ से बहुत दूर।"

"बाबूजी वहाँ क्या करने गये है ?"

"वह अपने मन से नहीं गये हैं, सरकार ने उन्हे भेजा है।"

"सरकार ने क्यों भेजा है ?"

गायत्री ने मंद स्वर में कहा—"उन्होंने अपराध किया था।"

जान्हवी ने पूछा—"क्या अपराध था ?"

न-जाने क्यों यह प्रश्न सुनते ही गायत्री का मुख-मंडल लाल हो गया। लाल लज्जा से हुआ या अभिमान से ? उसने गर्व-पूर्ण स्वर मे कहा—"उसे सुनकर क्या करेगी। ससार के समन्न अपराध न था, किंतु सरकार की आँखो में वह गुरुतर अपराध था। सोई हुई आत्मा को जगाना धार्मिक दृष्टि से पाप भले ही न हो, किंतु राजनीतिक दृष्टि से पाप अवश्य है। अत्याचार सहना धर्म है, और उसका प्रतिकार करना अधर्म। देश की आवाज के साथ वह वीर सैनिक की भाँति कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण हो गए। वह नि.शस्त्र थे, और शात थे। वह निर्बल थे, और असहाय थे। न्याय का गला घुटते देख सहायता को दौड़े। वह बंदी बनाये गये, और मुझ अभागिनी से छुड़ाकर सुदूरवर्ती प्रदेश को भेज दिये गये।

जान्हवी ने समझा या नहीं, वही जाने। अभागिनी मा का हृदय जो वेदना, जो पीड़ा अनुभव कर रहा था, उसे जान्हवी न जान सकी। गायत्री के नेत्रों के सम्मुख अतीत का दृश्य फिर गया। रामकृष्ण की अंतिम विदा स्मृति-पट पर अंकित हो गई। शृंखला-बद्ध रामकृष्ण की सुंदर प्रतिमा सामने आ गई। वह विदा का दृश्य था। रामकृष्ण अपनी प्रियतमा गायत्री को छोड़कर समुद्रपार कालेपानी जानेवाले थे। गायत्री रो रही थी। रामकृष्ण जान्हवी को गोद में लेकर बार-बार उसके अरुण कपोलों को चूम रहे थे। अश्रु पूर्ण नेत्रों, अवरुद्ध कंठ से गायत्री से कहा था—"देखो मेरी यह धरोहर नष्ट न होने पावे। यदि कभी लौट सका, तो इसका विवाह करूँगा।" कह ही रहे थे कि समय समाप्त हो गया, और सैनिक ने कहा—"चलो।" रामकृष्ण चले गए। गायत्री मोटर पर बैठे हुए रामकृष्ण की ओर एकटक देख रही थी। वह भी देख रहे थे, किंतु उनकी दृष्टि में कितना अभिमान था, कितना गौरव था, कितना प्रेम था और कितनी परवशता थी, गायत्री ही समझ सकी थी। उसका शरीर रोमांचित हो गया। हृदय सिहर उठा। उसने रोकर हृदय हलका करना चाहा, किंतु न कर सकी। उससे न रोया गया और न वह रोई। किंतु मन-ही-मन जो वेदना उसने अनुभव की, वह और कठिन तथा असहनीय थी।

मा को चिंतित देख जान्हवी ने पूछा—"क्या बाबू जी वहीं रहेंगे, यहाँ नहीं आवेंगे?"

मा ने रुँधे गले से कहा--"अब नहीं आवेंगे।" जाह्नवी विकल हो गई। वह फिर अपने पिता को देख न पाएगी। यद्यपि वह बालिका थी, तथापि वह इतनी अबोध न थी। रह-रहकर कभी स्मृति की झलक दिखाई देती, और उसमे वह अपने पिता के दर्शन कर लेती। वह निरी बालिका थी, शोक सहन न कर सकी, रोने लगी।

गायत्री ने उसे बोध देने के हेतु कहा—"पिता नहीं है, मै तो हूँ। मैं तुम्हारी मा हूँ।" यह कह उसने जाह्नवी का मुख चूम लिया।

[३]

शांतिपुर मे गगा के तट पर आज तीज का मेला है। हिंदू-महिलाओं का पवित्र दिवस है। हर्ष की उत्तु ग तरगें बडे वेग से उठती हैं, और शोक तथा कालिमा को बहा ले जाती हैं। सभी महिलाएँ प्रसन्न हैं। किंतु गायत्री को प्रसन्नता नहीं है। जाह्वी आज और विकल है। ज्वर का वेग कम नहीं हुआ, वरन् बढ गया है। गायत्री उसके सिरहाने बैठी हुई सेवा में तन्मय हो रही है।

शातिपुर में शिवनाथ भी रहता था। शिवनाथ कानपुर के किसी कालेज मे पढता था। इधर पिता की बीमारी का सवाद पाने से छुट्टी लेकर चला आया था। जान्हवी को वह बहुत प्यार करता था। बालिका जान्हवी शिवनाथ के आने की राह सर्वदा देखा करती थी। शिवनाथ को वह 'भैया' कहकर पुकारा

करती थी।

संध्या थी। निशा का आरोहण था और दिवस का अंत। शिवनाथ ने आकर जान्हवी को पुकारा। जान्हवी ने कोई उत्तर न दिया। वह तो अचेत थी। ज्वर के ताप में विकल थी।

शिवनाथ ने आकर गायत्री से पूछा—"चाचा, जान्हवी की कैसी तबियत है?"

गायत्री ने उत्तर दिया—"वैसी ही है शिवनाथ, ज्वर तो उतरा ही नहीं।" शिवनाथ ने जान्हवी के मस्तक पर हाथ रख ताप देखना चाहा। जान्हवी जाग पड़ी। शिवनाथ को देख जान्हवी ने कहा—"भैया, हमें साड़ी ला दो।"

शिवनाथ ने सप्रेम पूछा—"कैसी लोगी जान्हवी?"

बालिका ने मंद स्वर में कहा—"रेशमी। किंतु "

वह चुप हो गई।

शिवनाथ ने पूछा—"किंतु क्या?"

जान्हवी ने कुछ देर सोचकर कहा "कुछ नहीं, मेरे लिये साड़ी न लाना। मैं न लूँगी।"

शिवनाथ ने साश्चर्य पूछा—"क्यों?"

जान्हवी ने कहा—"मा के पास रुपए नहीं हैं।"

शिवनाथ ने कहा—"मैं ला दूँगा।"

जान्हवी ने साभिमान कहा—"नहीं, मैं नहीं लूँगी। मा के न स्पए नहीं मैं नहीं लूँगी। कहाँ से ले सकती हूँ। नहीं, न लाना।"

जाह्नवी ने दु:ख से अपना मुख फेर लिया। गायत्री के मुख पर आत्माभिमान की ज्योति जगमगाने लगी। उसने सगर्व जाह्नवी की ओर देखा। शिवनाथ चुपचाप जाने लगा। जाते समय कहा—"ओषध समय पर देती जाना।"

शिवनाथ चला गया। घर में केवल मा-बेटी रह गईं। एक बीमार थी और दूसरी मृतप्राय। एक को शारीरिक पीडा थी और दूसरी को आंतरिक तथा मानसिक व्यथा। दोनों ही दु:खी थीं।

लगभग एक घटे के पश्चात् शिवनाथ एक साडी और एक थाली में भोजन लिए हुए आया। साडी रेशमी थी।

गायत्री ने सब देखकर कहा—"खाने को भी ले आए, मैंने आज ही तो बनाकर खाया है। यह सब क्यों ले आए।"

जाह्नवी ने करवट बदलकर कहा—"भैया, मैंने तो कहा था कि मैं नहीं पहनूँगी" फिर क्यों ले आए ?" शिवनाथ न जान सका कि वह क्या उत्तर दे। किंतु उसने जाह्नवी से कहा—"क्यों जाह्नवी, क्या मैं आज नई चीज दे रहा हूँ ? कितने ही बार खिलौने लाकर दिए। वह सब क्या तुमने नहीं लिए। देखो, सभी नए-नए कपडे पहने हैं। तुम न पहनोगी तो मुझे दु:ख होगा।" जाह्नवी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

शिवनाथ ने फिर पूछा "न पहनोगी ?"

जाह्नवी मा की ओर देखने लगी। गायत्री ने कहा—"पहन लो बेटी ! तुम्हारे भैया लाए हैं।"

जाह्नवी ने साडी लेकर मा से कहा—"तुम्हीं पहना दो।"
मा ने साडी पहना दी।

करती थी।

सन्ध्या थी। निशा का आरोहण था और दिवस का अंत। शिवनाथ ने आकर जान्हवी को पुकारा। जान्हवी ने कोई उत्तर न दिया। वह तो अचेत थी। ज्वर के ताप में विकल थी।

शिवनाथ ने आकर गायत्री से पूछा—"चाचा, जान्हवी की कैसी तबियत है ?"

गायत्री ने उत्तर दिया—"वैसी ही है शिवनाथ, ज्वर तो उतरा ही नहीं।" शिवनाथ ने जान्हवी के मस्तक पर हाथ रख ताप देखना चाहा। जान्हवी जाग पड़ी। शिवनाथ को देख जान्हवी ने कहा—"भैया, हमें साड़ी ला दो।"

शिवनाथ ने सप्रेम पूछा—"कैसी लोगी जान्हवी ?"

बालिका ने मंद स्वर में कहा—"रेशमी। किंतु "

वह चुप हो गई।

शिवनाथ ने पूछा—"किंतु क्या ?"

जान्हवी ने कुछ देर सोचकर कहा "कुछ नहीं, मेरे लिये साड़ी न लाना। मैं न लूँगी।"

शिवनाथ ने साश्चर्य पूछा—"क्यों ?"

जान्हवी ने कहा—"मा के पास रुपए नहीं है।"

शिवनाथ ने कहा—"मैं ला दूँगा।"

जान्हवी ने साभिमान कहा—"नहीं, मैं नहीं लूँगी। मा के पास रुपए नहीं मैं नहीं लूँगी। कहाँ से ले सकती हूँ। नहीं, मत लाना।"

जाह्नवी ने दु ख से अपना मुख फेर लिया। गायत्री के मुख पर आत्माभिमान की ज्योति जगमगाने लगी। उसने सगर्व जाह्नवी की ओर देखा। शिवनाथ चुपचाप जाने लगा। जाते समय कहा—"औषध समय पर देती जाना।"

शिवनाथ चला गया। घर मे केवल मा-बेटी रह गई। एक बीमार थी और दूसरी मृतप्राय। एक को शारीरिक पीडा थी और दूसरी को आंतरिक तथा मानसिक व्यथा। दोनो ही दु खी थीं।

लगभग एक घटे के पश्चात् शिवनाथ एक साडी और एक थाली मे भोजन लिए हुए आया। साडी रेशमी थी।

गायत्री ने सब देखकर कहा—"खाने को भी ले आए, मैंने आज ही तो बनाकर खाया है। यह सब क्यों ले आए।"

जाह्नवी ने करवट बदलकर कहा—"भैया, मैंने तो कहा था कि मैं नहीं पहनूँगी" फिर क्यों ले आए?" शिवनाथ न जान सका कि वह क्या उत्तर दे। किंतु उसने जाह्नवी से कहा—"क्यों जाह्नवी, क्या मै आज नई चीज दे रहा हूँ? कितने ही बार खिलौने लाकर दिए। वह सब क्या तुमने नहीं लिए। देखो, सभी नए-नए कपडे पहने हैं। तुम न पहनोगी तो मुझे दु ख होगा।" जाह्नवी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

शिवनाथ ने फिर पूछा "न पहनोगी?"

जाह्नवी मा की ओर देखने लगी। गायत्री ने कहा—"पहन लो बेटी! तुम्हारे भैया लाए है।"

जाह्नवी ने साडी लेकर मा से कहा—"तुम्हीं पहना दो।"

मा ने साडी पहना दी।

शिवनाथ भूमि पर जाह्नवी के सामने बैठ गया। जाह्नवी ने पूछा—"भैया, हमें एक चिट्ठी लिख दोगे?"

शिवनाथ ने पूछा—"किसको ?"

जाह्नवी ने कहा "बाबूजी को लिखाऊँगी कालेपानी को।"

शिवनाथ ने बोध देने को कह दिया "हाँ, लिख दूँगा।"

जाह्नवी ने पूछा—"कालापानी कहाँ है?"

शिवनाथ ने कहा—"यहाँ से बहुत दूर एक देश है।"

जाह्नवी ने पूछा—"क्या मै वहाँ जा सकती हू?"

शिवनाथ ने कहा—"नहीं, तुम नहीं जाने पाओगी।"

जाह्नवी ने प्रलाप की भाँति बकते हुए कहा—"मै जाऊँगी, बाबूजी से मिलूँगी, बाबूजी, बाबूजी, कालापानी, कालापानी।"

शिवनाथ ने पूछा—"क्या कहती हो जाह्नवी?"

जाह्नवी ने हँसकर कहा—"तुम कौन हो? क्या यह कालापानी है? मेरे बाबूजी को क्या तुमने देखा है? बोलो। तुम बोलते क्यों नहीं? क्या यही मेरे बाबूजी है?"

जाह्नवी बकती ही गई। गायत्री तो घबरा गई। जाह्नवी के मुख पर पसीने की बूँदें झलमला रही थीं। शरीर हिम-सा शीतल हो रहा था। शिवनाथ चकित हो गया। उसने पूछा—"क्या कहती हो?"

जाह्नवी ने कुछ नहीं सुना। वह कहती ही गई। "कालापानी कालापानी मैं तो चलते-चलते थक गई अब नहीं चलूँगी .ठहरो बाबूजी कहाँ हो . मुझे मिल लेने दो।" और

उसी भाँति लगभग एक घंटे के पड़ी रही। प्रलाप बार-बार बकती थी। फिर उसकी आँखें चढ़ गईं। मृत्यु-विभीषिका सम्मुख आने लगी। वह चुप हो गई, और हो गई सर्वदा के लिये!

गायत्री ने घबराकर जाह्नवी का सिर अपनी गोद में ले लिया। वह अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी। जाह्नवी ने न जाना कि कोई उसे देख रहा है। उसके नेत्रों से ज्योति तिरोहित हो चुकी थी। शिवनाथ भी रोने लगा। गायत्री बड़े जोर से रो पड़ी। "हाय मेरी बेटी!" कह अचेत हो गिर पड़ी।

जाह्नवी की अंतरात्मा कहीं को गमन कर चुकी थी।

[४]

प्रभातकाल की शांत मयूखें समुद्र के नीले वक्ष पर पड़कर झिलमिली पैदा कर रही थीं। द्वीप की गगन-चुम्बी शृंग-मालाओं पर सूर्य की किरणें केलि कर अपने काम में लगे हुए कैदियों के मन बहलाने का यत्न कर रही थीं। अभागे कैदियों को यह सुख कहाँ बदा था, वे तो शिलाओं को खोद रहे थे। उनका मन कहीं और था। सिर पर कोड़ा लिए हुए एक गोरा खड़ा था। जहाँ किसी का ध्यान इधर-उधर गया, बिजली चमक उठी, और गिर पड़ी। शरीर से रक्त बहने लगा। बड़े सुख से पाले हुए भारतीय शरीर का शोणित यों ही बहाया जाता है। अभागे भारतीय अपने रक्त से भारत-भूमि को नहीं सींचते, परन्तु वे सींचते हैं सुदूरवर्ती अडमान द्वीप की भूमि!

रामकृष्ण का हाथ थक गया। उन्होंने कुदाल रख दी, और विश्राम लेने को उसी के सहारे खडे हो गए। वह एक पाप था। हाँ, विश्राम ले लेना एक भयानक पाप है। ससार के समक्ष नहीं, एक विदेशी अधिकारी के समक्ष! उसने पाशविक प्रवृत्ति-पूर्ण निष्ठुरता से देखा। उसने उसे अपराध समझा। उसने कोड़ा उठाया और मार दिया। उसने अपना हाथ-भर हिलाया, किन्तु रामकृष्ण की काली पीठ से खून की धारा बह निकली। एक ही पर अत न था। दूसरा उठा और फिर तीसरा। रामकृष्ण अब अधिक न सहन कर सके। उनको केवल मूर्छा का सहारा था। निश्चेतना दौडी और भारतीय को अपने अंक मे स्थान दे दिया। उसने काले और सफेद चर्म का भेद न किया, केवल लाल रक्त देखा, जो दोनो मे बहता है। ससार के दुखियो के पास निश्चेतना ही एक सुखमय सहारा है—वही एक सुखमय वस्तु है। भगवान् ने भी मानो और वस्तु उनके लिये बनाई ही नहीं।

गेंद मे हवा भरो, वह फूलता जायगा। परिमाण से अधिक भर देने मे वह फट जायगा। सहन-शक्ति की भी हद है—उस की भी कोई परिवर्धित सीमा है। अन्यान्य कैदी इस अत्याचार को न सहन कर सके। वे बिगड गये, और मनसिंह ने तो बढकर कोडा ही छीन लिया। अधिकारी भौरे की भांति मन-मनाने लगा। न-जाने क्या बकता हुआ चला गया। सब लोग रामकृष्ण की शुश्रूषा करने लगे।

कमिश्नर साहब आए। वह अराजको को दंड देने आए।

उनकी कठोर व्यवस्था करने आए। उनके मुख का शब्द ईश्वरीय आज्ञा थी। उनकी इच्छा कानून था। उन्होंने आज्ञा दी कि सब कैदी अपराधियों की भांति आत्म-समर्पण कर दें, नहीं तो उन के लिए केवल एक दंड और शेष है, और वह है रक्त की प्यासी गोली का शिकार होना। भारतीय कैदियों के हाथों में लोहे के आभूषण शोभित होने लगे। वे बांध डाले गये। सब विद्रोही थे। उन्होंने बड़ा भारी अपराध किया था। उन्होंने अत्याचारी का अस्त्र छीन लिया था। क्या यह कम अपराध है? यही अपराध था और गुरुतर था। यह अराजकता है। अराजकता क्यों नहीं? साँप का विष-दांत तोड़ डालो, और वह अपराध नहीं है? यह है न्याय और उसके रचनेवाले का ढोंग!

रामकृष्ण अचेत ही रहे। चेतना की दु:खमय सीमा में उन्होंने अपना पैर न रक्खा। रामकृष्ण को उस अवस्था में भी सुख न था। उनकी अंतरात्मा भारत के शान्तिपुर में विचर रही थी। उन के समक्ष जाह्नवी की बाल-क्रीड़ा नृत्य कर रही थी। उनके अनिमेष नेत्र जाह्नवी का घुटनों के बल चलना और फिर गिर पड़ना देख रहे थे। उन के कान सुन रहे थे उस की किलकारियाँ और गायत्री की प्रेम-भरी झिड़कियाँ। पट परिवर्तित हुआ। अब की बार उनकी आँखों ने कुछ और ही दृश्य देखा। अब की बार मलिन-वदना, जाह्नवी शय्या पर लेटी हुई थी। गायत्री खड़ी हुई रो रही थी। उस के कानों ने अब की बार सुनी उसकी शोकोच्छ्वास-पूर्ण दबी हुई उसाँसें। दृश्य पुन: बदला, और अब की बार

एक अपूर्व दिव्य-ज्योति आकाश में उडती हुई दिखाई दी। प्रकाश उडता हुआ उनके पास आ गया। रामकृष्ण ने आँखे खोल दीं। भ्रांति-पूर्वक वह चारो ओर देखने लगे। निविड अंध-कार-राशि थी, किन्तु थोडी दूर पर वह प्रकाश स्थित था। राम-कृष्ण को विश्वास न हुआ। उन्होने आँखें मलकर देखा, कहीं कुछ न था। केवल निर्जन कोठरी थी, और अभेद्य अंधकार था। उन्होंने करवट बदली। उनको पीडा मालूम हुई। किंतु उन्होंने उस की किंचित् परवाह न की। वह कैसे करे? उनको और ही चिंता थी। वह जाह्नवी के लिये दु खी थे। पिता का हृदय संतान के देखने के लिये रो रहा था, वह दु खी थे।

प्रभातकाल हुआ। सूर्य उदय हुआ। नित्य भी होता है, और आज भी हुआ। पर आज का सूर्य नव हर्षमय समाचार को लेकर उदित हुआ। आज समस्त कैदियों के लिये सुप्रभात था। कल की रात्रि काल-रात्रि थी। वह कट गई थी। वे आज स्वतंत्र थे। माता के पुजारी स्वतंत्र थे। सम्राट् की आज्ञा नहीं दया ,, उनकी बडी अनुकंपा से, वे आज मुक्त हो गए थे। पंजाब हत्याकांड-रक्त मे रँगे हुए हाथों को इस दया रूपी जल से धोने का यत्न सम्राट् ने किया था। मानो ब्रिटिश राजनीति के माथे पर से लगे हुए कलंक-टीके को मिटाने का उपाय किया गया था।

एकांत कोठरी में पडे हुए रामकृष्ण ने भी सुना। पहले उसने परिहास समझा, किंतु जब संतसिंह, मोहनलाल, वारींद्र प्रभृति

ने आकर रामकृष्ण को हृदय से लगाकर 'वदेमातरम्' जय-ध्वनि की, तब उसने सत्य समझा। कल इसी समय सब अपराधी अराजक और विद्रोही माने गये थे, पर अब इस समय सब स्वतंत्र है। ईश्वर की अपार महिमा, अखंड माया।

वीरींद्र ने मुस्कराकर कहा—"कहो रामकृष्ण, कैसे हो?"

रामकृष्ण ने अन्यमनस्कता-पूर्वक कहा—"अच्छा ही हूँ।"

वारींद्र ने फिर कहा—"चलो भाई, अब हम फिर जननी जन्मभूमि की पवित्र च[illegible]ण-रज अपने मस्तक पर धारें—शस्यश्यामल क्षेत्र की सुश[illegible]—" पवन का आनंद लें—निर्मल सरोवरों में स्नान करें—[illegible]र और च[illegible] टूटी झोपडियों में उनके प्रेमोन्मत्त सरस गान को [illegible] गाँव में नहीं [illegible]ह्नवी की तरल तरगों में विहार करें। एक बार पुन[illegible] तो वह बडा [illegible] करें।"

[illegible] [illegible]ास से हटेगी नह[illegible] नहीं सुना। उन्होंने केवल जाह्नवी का नाम-

चाचा यह बात, च[illegible] सुनते ही उनका हृदय सिहिर उठा। पूछती है।" [illegible] से अजस्र अश्रु-धारा बहने लगी। उन

रामकृष्ण [illegible] [illegible]ी को देखने के लिये आतुर हो गया। में है? कौन जाने [illegible]ंसू हर्ष के है—किसने जाना कि यह उनके थे। मनुष्य की श[illegible]

रामकृष्ण का [illegible] समुद्र के तट पर जलयान खडा था। स्थान-स्थान पर [illegible] में बैठ गए। वह चल पडा। भारतीय वीरों विह्वलावस्था में [illegible]करके कहा—"वदेमातरम्।"

आशा से पुकारा [illegible] तरंगों ने भीमनाद में प्रतिध्वनि की—

रामकृष्ण ने कहना चाहा, 'वंदेमातरम्', किंतु वह न कह सके, और उनके मुख से निकल गया—"हाय जाह्नवी !"

[५]

नीरव संध्या के अंधकार में शांतिपुर के स्टेशन पर दो मनुष्य उतरे ।

वारींद्र ने रामकृष्ण से कहा—"भाई रामकृष्ण, मैं तो अपने घर जा रहा हूँ । वंदे ।"

रामकृष्ण ने वारींद्र का हाथ पकड़ को ग ए कहा—"भाई'
पहले मेरे घर पर हो लो, फिर जाना । तुम्ह हृदय ? तो मर ही
गई, फिर किससे मिलने की आतुरता है ? कहते थे,
तुम्हारी एक नन्ही करुणा है ।"
भी होता है, अ
वारींद्र—"हाँ भाई, मेरे बंदी होने के समाचार को लेकर हुई
थी, उसी की प्रसव-पीड़ा में उसकी माँ म य सुप्रभात था । वर्ष ।
हुए । भला बताओ, जिस को अपने जीवन । वे आज स्वतंत्र
नहीं, जो मेरी प्राणप्यारी की अंतिम भेंट ा नहीं दया
लिये किसका मन आतुर न होगा ।" गए थे । पंजाब
रामकृष्ण—"ठीक है । लेकिन पहले मेरे रूपी जल में
नन्हे हाथों का पान खाना ही पड़ेगा, और ब्रिटिश राजनीति
है । कहाँ भटकोगे ?" हटाने का उपाय
वारींद्र—"तभी तो जाने में और मज़ा
रामकृष्ण—"तुम्हारी प्रकृति भी विचित्र ना । पहले उसने
वारींद्र—'मैंने बम बनाए थे । अगर ।, वारींद्र प्रभृति

होती, तो इतने साहस के काम मे कैसे हाथ डालता।"

रामकृष्ण—"व्यर्थ की बात न करो। आज मेरा आतिथ्य स्वीकार कर, चिरकाल के बाद मिलने वाले सुख मे भागी बनकर तब कल जाना। देखो, गॉव भी नजदीक आ गया।"

वारींद्र—"मेरा गाव भी तो यहॉ से दो ही कोस रहेगा।"

रामकृष्ण—"अच्छा, कम-से-कम मेरे घर चलकर जल-पान कर लेना। फिर एक आदमी साथ कर दूॅगा, उसी के साथ चले जाना।"

वारींद्र—"यह माना।"

रामकृष्ण—"मेरी जाह्नवी को देखकर तुम खुश हो जाओगे। ऐसी सुदर और चचल लड़की एक गॉव की कौन कहे, दस-बीस गॉव में नहीं है। जाह्नवी की बुद्धि बडी कुशाग्र है। और पान तो वह बडा ही अच्छा लगाती है। तुम्हें देखते ही तुम्हारे पास से हटेगी नहीं। चाचा-चाचा कहकर नाकों दम कर देगी। चाचा यह बात, चाचा वह बात, देखना, कितने प्रश्न-पर प्रश्न पूछती है।"

रामकृष्ण! तुम्हारी बडे प्यार की जाह्नवी क्या इस संसार मे है? कौन जाने। तुम तो अभी तक काले पानी मे सड रहे थे। मनुष्य की शक्ति सीमाबद्ध है। हाय रे मनुष्य!

रामकृष्ण का घर गॉव के सिरे पर ही था। उन्होंने देखा, स्थान-स्थान पर उनका घर टूट-फूट गया है। बिल्कुल नन-विच्छतावस्था मे पडा हुआ है। दहलीज पर पैर धरते ही बडी आशा से पुकारा—"जाह्नवी!" ऊपर के खंड का एक कमरा

खुला, और उस से टिमटिमाते दीपक का प्रकाश बाहर देखने लगा कि जाह्नवी को कौन पुकार रहा है ?

गायत्री ने सिसकियाँ छिपाते हुए कहा—"कौन ?"

रामकृष्ण ने समझा, गायत्री सो गई होगी। उसने खखारकर कहा—"मैं हू रामकृष्ण।"

गायत्री का हृदय इसे सहन कर सकने के लिये तैयार न था। वह निस्तब्ध वैसी ही खडी रही।

रामकृष्ण ने अँधेरे मे पहचानने की कोशिश करते हुए कहा—"कौन, जानू की मां ?" गायत्री जोर से रो पडी।

रामकृष्ण स्तंभित हो गये। उन्होंने बडी कठिनता से पूछा—,'रोती क्यो हो। मै हू। जाह्नवी कहाँ है ?"

गायत्री ने रोते-रोते कहा—"वह तुम्हे देखने कालेपानी गई है।" रामकृष्ण की समझ मे कुछ न आया। उन्होंने पूछा—"क्या ?"

गायत्री ने रोते हुए कहा—"बेचारी एक साडी को तडप-तडप कर हम लोगों को छोडकर चल गई। मै तुम्हारी धरोहर न रख सकी। उसको खो दिया। आज तीज है। आज ही के रोज मरी थी। उसको गए एक साल बीत गया। हाय रे मेरी प्यारी बेटी, मेरे लाल, मेरे प्राण ! हाय ! उसे खोकर मैं अब भी जीती हूँ।"

रामकृष्ण मे सब सुनने की ताब न थी। वह बैठ गए। वारींद्र किसी तरह उन्हे उठाकर भीतर वाले कमरे मे ले गया।

रामकृष्ण ने पोटली खोलते हुए कहा—"भाई वारींद्र, मेरी जाह्नवी तो मर गई। उसके लिये कलकत्ते मे एक साडी खरीदी थी। उसे अब कौन पहनेगा। यह अपनी करुणा को पहना देना। तुम्हारी करुणा ही अब मेरी जाह्नवी है।"

वारींद्र ने रोते हुए वह साडी ले ली। वह साडी सा रेशमी थी।

शेष-संबल

[१]

बाबू चन्द्रमाप्रसाद की अवस्था जब किसी तरह से न सुधरी, तब वह एक प्रकार से अपने जीवन से निराश हो बैठे। लेकिन उन्हें इस बीमारी की अवस्था में भी शांति न थी। मरने से न डरते थे। वह मरने के लिये तैयार थे। लेकिन अगर किसी बात की चिंता थी, तो वह अपनी सहधर्मिणी सुन्दरी की। वह सोचते कि यह भार किसको सौंप जाय। वह अकेले ही थे। परिवार में खाली एक वृद्धा माता थी। जानते थे कि वह भी उनके मरने के बाद थोड़े ही दिन में चल बसेगी। तब उनकी स्त्री का क्या होगा। यही चिंता उनको रात-दिन परेशान किए रहती। सुन्दरी को जब देखते, तब उसी की ओर देखा करते।

आज भी उसी तरह एकटक पति को अपनी ओर देखते देख सुन्दरी ने पूछा—"इस तरह मेरी ओर क्या देख रहे हो?"

चन्द्रमाप्रसाद ने ठंडी सांस लेकर कहा—"तुम्हारा रूप।" सुन्दरी ने शर्म से अपनी निगाहें निची कर लीं।

फिर चंद्रमाप्रसाद ने पूछा—"मेरे बाद तो तुम ?" सुन्दरी ने और न कहने दिया। अपने नन्हे-नन्हे हाथों से उनका मुख बंद कर दिया। उसने फिर आँखों में आँसू भरकर कहा— क्यों

ऐसी बातें कहकर मेरा दु ख बढाते हो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। मुझसे ऐसी बाते न कहा करो।"

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"इसमे बुरी बात कौन-सी है। मै अपनी दशा को देखकर समझ रहा हू कि मै थोड़े ही दिनो का हू। यह ज्वर जब मुझे किसी तरह नहीं छोड़ता है, तब कैसे मै अपने जीवन का भरोसा करूँ। थाइसेस (यक्ष्मा) मुझे निश्चय है। अब मैं नहीं बचने का। मुझे रात-दिन यही चिंता है कि मेरे बाद तुम क्या करोगी, कैसे अपना जीवन व्यतीत करोगी।"

सुन्दरी ने रोते-रोते कहा—"यही सब व्यर्थ की बातें सोच-सोचकर तो तुम और अपनी हालत खराब कर रहे हो। कौन कहता है कि तुम्हे थाइसेस है। तुम्हे पित्तज्वर है। थोड़े दिनो मे अच्छा हो जायेगा। मेरे कहने से ईश्वर के लिए यह सब कुछ न सोचो।"

चद्रमाप्रसाद ने एक ठढी सॉस लेकर कहा—"ये सब फिजूल की बातें है। मेरे नाम चित्रगुप्त के यहाँ से वारट निकल गया है। दो-तीन महीने बाद ही वहाँ पर हाजिरी देनी पड़ेगी। मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा ?"

सुन्दरी ने रोते-रोते अपना मुख चद्रमाप्रसाद के वक्षस्थल पर रख दिया। चंद्रमाप्रसाद उसके बालो को सहलाने लगे। फिर चद्रमाप्रसाद ने धीरे-धीरे कहा—"तुम मुझे भूलने का यत्न करना। अगर कभी भूल सको, तो अपना दूसरा विवाह कर लेना।"

सुन्दरी ने आहता फणिनी की भाँति गर्व से सिर उठाकर कहा—"चुप रहो। ऐसी बातें मै नहीं सुनना चाहती।" चद्रमाप्रसाद सतोष की हँसी हँसने लगे। सुन्दरी उठकर जाने लगी। चद्रमाप्रसाद ने उसे न रोका। जाने दिया। सुन्दरी आँसू-भरी आँखों सहित चली गई। चद्रमाप्रसाद सोचने लगे—

"वह मेरी ऐसी बातें सुनते ही रो पडती है। आह! वह मुझे कितना प्यार करती है। मेरे लिए जान देने के लिए तैयार है, और मैं मैं थोडे ही दिनों का मेहमान हू। हाय! भगवन्, क्या तुम्हें यही करना अभीष्ट था कि एक नवयुवक और नवयौवना की वासनाएँ अतृप्त रख, दोनों को जुदा कर दो। किन पाप-कर्मों से ऐसा दड दे रहे हो दयामय! मुझे कुछ दिनो तक और जीवित रहने दो, उसे प्यार कर सुख भोगकर लेने दो, फिर मुझे मरने मे भी आनन्द मिलेगा। मैं सहर्ष मर जाऊँगा, केवल एक साल और जीवित रह जाने दो।"

चंद्रमाप्रसाद न मालूम कितनी देर तक इन्हीं विचारों मे मग्न रहते कि उनके परम मित्र रामशंकर ने कमरे के अदर आकर कहा—"भाई साहब, आज कैसी तबियत है?"

चद्रमाप्रसाद ने चौंककर कहा—"कौन, रामशंकर"

रामशंकर ने हँसते हुए कहा—"हाँ, श्रीयुत रामशकर जी पधारे हैं। कहिये?"

चद्रमाप्रसाद ने एक ठडी साँस लेकर कहा—"भाई, रामशकर!"

चद्रमाप्रसाद की आँखो मे आँसू भर आए।

रामशंकर की आकृति उन आँसुओं को देखते ही बदल गई। मुख की हँसी चली गई। उन्होंने गंभीरता-सहित कहा—"चंद्रमा! यह क्या बात है! अब कैसी तबियत है?"

चंद्रमाप्रसाद ने कहा—"तबियत का अब क्या हाल पूछते हो। एक तरह से अच्छा ही हूँ।"

रामशंकर ने कहा—"एक तरह के क्या मानी। कहिए न!"

चंद्रमाप्रसाद ने एक शुष्क हँसी हँसकर कहा—"थाइसेस के रोगी की तबियत! वह तो हमेशा खराब रहती है, जब इससे छुटकारा मिलता है, तभी अच्छी होती है, और फिर अच्छी होती है हमेशा के लिये।"

रामशंकर ने किंचित क्रोध-सहित कहा—"कौन कहता है कि तुम्हें थाइसेस है। तुम्हें थाइसेस नहीं है, निश्चय जान रक्खो। तुम्हें किसने बहका दिया है? भाभी!

चंद्रमाप्रसाद ने कहा—"अरे, उसे न बुलाओ। उसने नहीं कहा। किसी ने नहीं कहा। कहने वाला है मेरा मन। न मालूम कौन रह-रहकर मेरे दिल में कहता है कि तुम्हें थाइसेस निश्चय ही है, ये लोग तुम्हें बहका रहे हैं। और मैं भी तो कुछ बेवकूफ नहीं हूँ, Symptoms देखकर मैं भी जान सकता हूँ कि यह थाइसेस है या नहीं।"

रामशंकर ने अपनी हँसी से कमरे को प्रतिध्वनित करते हुए कहा—"वाह भाई वाह! डॉक्टर-वैद्य कहें पिस्टर और आप समझे बैठे हैं थाइसेस। खूब! अजी जनाब, अगर आप ऐसा ही समझते रहेंगे, तब शायद अवश्य आपको थाइसेस हो जाय!

है।

मैं भी बाजी रखकर कह सकता हूँ कि आपको थाइसेस नहीं। या क्या फिजूल की बातें लगाए हो।"

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"यो तो बेवकूफ मै भी बना सकता हूँ।"

सुंदरी ने कमरे मे प्रवेश करते हुए कहा—"क्या है ? क्यो बुलाया ?"

चद्रमाप्रसाद ने जल्दी से कहा—"बुलाया नहीं। कुछ काम नहीं है। जाओ।" सु दरी जाने लगी।

रामशकर ने कहा—"भाभी! तुमने कुछ सुना है, भाई साहब कहते हैं कि मुझे थाइसेस है। जरा इनका पागलपन तो सुनो!"

सु दरी ने रुककर कहा—"हाँ, मुझसे भी ऐसा ही कह रहे थे। बराबर यही धुन लगाए हैं कि थाइसेस है, थाइसेस है। तुम्हीं समझाओ। मैं तो कहते-कहते हार गई।"

चंद्रमाप्रसाद अपराधी की तरह चुप पडे रहे।

रामशकर ने कहा—"न मालूम किसने इन्हे यह सुझा दिया है।"

सु दरी चली गई।

चद्रमाप्रसाद ने धीरे-धीरे कहा—"रामशकर, क्या मै तुम पर विश्वास कर सकता हूँ ?"

रामशकर ने कहा—"भाई, क्या आज तक कभी मैं तुम्हारा अविश्वास-भाजन बना हूँ ?"

चद्रमाप्रसाद ने एक ठडी साँस लेकर कहा—"नहीं तो, लेकिन '।" चद्रमाप्रसाद कहते-कहते रुक गए।

रामशकर की आकृति इन आँसुओं को देखते ही बदल गई। मुख की हँसी चली गई। उन्होंने गभीरता-सहित कहा—"चद्रमा! यह क्या बात है! अब कैसी तबियत है?"

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"तबियत का अब क्या हाल पूछते हो। एक तरह से अच्छा ही हूँ।"

रामशकर ने कहा—"एक तरह के क्या मानी। कहिए न!"

चद्रमाप्रसाद ने एक शुष्क हँसी हँसकर कहा—"थाइसेस के रोगी की तबियत! वह तो हमेशा ख़राब रहती है, जब इससे छुटकारा मिलता है, तभी अच्छी होती है, और फिर अच्छी होती है हमेशा के लिये।"

रामशकर ने किंचित् क्रोध-सहित कहा—"कौन कहता है कि तुम्हे थाइसेस है। तुम्हे थाइसेस नहीं है, निश्चय जान रक्खो। तुम्हें किसने बहका दिया है? भाभी!

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"अरे, उसे न बुलाओ। उसने नहीं कहा। किसी ने नहीं कहा। कहने वाला है मेरा मन। न मालूम कौन रह-रहकर मेरे दिल में कहता है कि तुम्हे थाइसेस निश्चय ही है, ये लोग तुम्हे बहका रहे है। और मै भी तो कुछ बेवक़ूफ़ नहीं हूँ, Symptoms देखकर मै भी जान सकता हूँ कि यह थाइसेस है या नहीं।"

रामशकर ने अपनी हँसी से कमरे को प्रतिध्वनित करते हुए कहा—"वाह भाई वाह! डॉक्टर-वैद्य कहे पित्तज्वर और आप समझे बैठे हैं थाइसेस। ख़ूब! अजी जनाब, अगर आप ऐसा ही समझते रहेंगे, तब शायद अवश्य आपको थाइसेस हो जाय!

है।

मै भी बाजी रखकर कह सकता हूँ कि आपको थाइसेस नहं। या क्या फिजूल की बाते लगाए हो।"

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"यो तो बेवकूफ मै भी बना सकता हूँ।"

सुंदरी ने कमरे मे प्रवेश करते हुए कहा—"क्या है ? क्यो बुलाया ?"

चंद्रमाप्रसाद ने जल्दी से कहा—"बुलाया नहीं। कुछ काम नहीं है। जाओ।" सुंदरी जाने लगी।

रामशंकर ने कहा—"भाभी ! तुमने कुछ सुना है, भाई साहब कहते हैं कि मुझे थाइसेस है। जरा इनका पागलपन तो सुनो !"

सुंदरी ने रुककर कहा—"हॉ, मुझसे भी ऐसा ही कह रहे थे। बराबर यही धुन लगाए हैं कि थाइसेस है, थाइसेस है। तुम्हीं समझाओ। मै तो कहते-कहते हार गई।"

चंद्रमाप्रसाद अपराधी की तरह चुप पडे रहे।

रामशकर ने कहा—"न मालूम किसने इन्हे यह सुझा दिया है।"

सुंदरी चली गई।

चद्रमाप्रसाद ने धीरे-धीरे कहा—"रामशकर, क्या मैं तुम पर विश्वास कर सकता हूँ ?"

रामशकर ने कहा—"भाई, क्या आज तक कभी मै तुम्हारा अविश्वास-भाजन बना हूं ?"

चद्रमाप्रसाद ने एक ठडी सॉस लेकर कहा—"नहीं तो, लेकिन ' ।" चद्रमाप्रसाद कहते-कहते रुक गए।

राम——————————————————

मुख्रामशंकर ने कहा—"लेकिन क्या ?"

चद्रमाप्रसाद कुछ देर रामशकर की ओर देखते रहे। फिर दु ख-भरे स्वर से कहा—"आज मैं तुम पर एक भार डालना चाहता हूँ। वह भार ऐसा-वैसा नहीं है। वह ऐसा कठिन है, जिसे सँभालना मुश्किल ही नहीं, वरन् कुछ असभव-सा भी है। बोलो, उस भार को लेने मे समर्थ होगे ?"

रामशकर ने तीक्ष्ण दृष्टि से चद्रमाप्रसाद के हृदय की बात जान लेने का यत्न किया। उन्होने सहज स्वर मे कहा—"वह कौन-सा भार है। तुम जो भार भी दोगे, चाहे जैसा कठिन हो, मैं सहर्ष उसे अपने सर पर लूँगा। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिये दैव-आज्ञा है।"

चद्रमाप्रसाद ने सतोप की एक ठडी साँस लेकर कहा—"वह अग्नि से खेलने के तुल्य है।"

रामशकर ने दृढ स्वर में कहा—"वह चाहे बारूद से खेलने के तुल्य क्यों न हो, मुझे सब स्वीकार है। कहो तो।"

चंद्रमाप्रसाद कुछ देर तक शून्य दृष्टि से देखते रहे। फिर उन्होंने कहा—"अच्छा, रहने दो। फिर कभी देखा जायगा। अभी कौन जरूरत है।"

रामशकर ने भी कुछ नहीं कहा।

[२]

मनुष्य के दिन चले ही जाते है। चाहे दिन वे सुख के हों, चाहे दुख के। सुख के दिन बडी आसानी से, जल की तरह,

जाते है, और दुख के दिन बडी कठिनता से—यही भेद है।

जिस तरह से चंद्रमाप्रसाद के दिन कटे, वही जानते हैं। या उसका कोई भुक्त-भोगी। चद्रमाप्रसाद की अवस्था दिन-पर-दिन खराब होती ही गई। लोगों का अनुमान था, शायद अच्छे हों, शायद दशा सुधर जाय, लेकिन वह धीरे-धीरे काल की ओर अग्रसर होने लगे। डॉक्टर, वैद्य आते और आशा दिलाकर चले जाते, लेकिन फायदा कुछ भी नहीं होता नजर आता। नए वैद्य, हकीम, डॉक्टर की दवा एक-दो दिन अपना असर दिखाती, और फिर वही दशा हो जाती। उनका बदन सूखकर कॉटा हो गया था। थाइसेस की थर्ड स्टेज थी। बहुतों को अब भी आशा थी, और बहुतों को निराशा। बेचारे उठने-बैठने मे लाचार थे। जिस हैरानी-परेशानी से वह दिन काट रहे थे, वही जानते थे।

चद्रमाप्रसाद ने करवट बदलते हुए कहा—"मेरी एक बात सुनो।"

सुदरी ने मलिन दृष्टि निक्षेप करके कहा—"कहो।"

चंद्रमाप्रसाद—"अब मैं बचने का नहीं।"

सुदरी ने आँखों की नदी को रोकते हुए कहा—"तुम्हारी ये ही बात रहती है। इसके सिवा क्या और कुछ कहना नहीं जानते, या कहते नहीं।"

चद्रमाप्रसाद ने एक शुष्क हँसी की चेष्टा करते हुए कहा—"और क्या कहूँ प्यारी!"

सुदरी ने कहा—"और कुछ कहो। और कुछ सोचो।"

चद्रमाप्रसाद ने कहा—"और क्या सोचूँ। तुम्हारे ही बारे

मे रात-दिन सोचा करता हूँ।"

चंद्रमाप्रसाद ने सप्रेम सुंदरी का हाथ पकड लिया।

सुंदरी ने ऑखो मे ऑसू भरकर कहा—"हमारे वारे मे क्यो इतना सोचा करते हो, जिस तरह से तुम्हे शांति मिले जिस तरह से तुम्हे सतोप हो, वही मै करने के लिए तैयार हूँ। कहो। मेरे ही वारे मे सोचकर तुमने अपनी यह दशा कर डाली। न-जाने किस कुघड़ी मैं यहाँ आई थी ?"

चद्रमाप्रसाद ने सप्रेम सुंदरी को अपनी ओर घसीटकर उसका मस्तक अपने वक्ष पर रख लिया। फिर शुष्क वालों को सुलझाते हुए कहा—"प्यारी, मै क्या तुम्हारा विश्वास करूँ, क्या तुम मेरे वाद ।"

सुंदरी ने अपने नन्हे-नन्हे हाथों से चंद्रमाप्रसाद का मुँह ढक लिया।

चद्रमा ने धीरे-धीरे उसका हाथ हटाते हुए कहा—"देखो! मेरे नाम को कलकित न करना, कोई काम ऐसा न करना, जिसमे मेरे पिता के और मेरे कुल के उज्ज्वल नाम मे कलक की कालिमा लग जाय! तुम नवयुवती हो, सुन्दरी हो। ससार के प्रलोभन तुम्हे अपनी ओर खींचेंगे, और खींचेंगे इतने जोर से कि शायद तुम अपने को सँभाल न सको। और उनमे फँस ही जाओ। अगर मेरे सुख से मरने मे कोई वाधा है, तो वह है एक तुम्हारी चिंता!

सुंदरी अपनी गर्दन नीची किये सुनती रही।

चद्रमाप्रसाद ने फिर कहना शुरू किया—

"प्रिये! अभी तुम ससार की गहरी चालों को नहीं। वह भी हो। संसार अभी तुमने देखा नहीं। जिस ससार को तुम सुदिन समझती हो, वास्तव मे वह दु:खमय है। सांसारिक सुख ओन से सुख है, लेकिन अगर उसका भीतरी भाग देखो, तो सिहिरकर पीछे हट जाओगी। जिन्हे तुम सुख समझती हो, वास्तव मे वे दु:ख हैं। ससार इतना गहन है कि उसका समझना टेढ़ी खीर है। देखो, मैं तुम्हे उसी ससार मे अकेले रखकर चला जा रहा हूँ। मेरा कर्तव्य था कि तुम्हे ससार के गहन मार्ग से तुम्हारा हाथ पकड़कर निकाल ले चलता, लेकिन वह कर्तव्य भगवान् ने पूरा करने ही नहीं दिया। प्राणेश्वरी, सतर्क हो जाओ, उसी गूढतम मार्ग से तुम्हें अकेले चलकर जाना होगा, बोलो, समर्थ होओगी?"

सुन्दरी अपना मुख नीचे किए रही। उसकी ऑखो से अजस्र अश्रु-धारा निकल रही थी।

चन्द्रमाप्रसाद ने फिर कहा—"बोलो, प्राणेश्वरी, मुझे आश्वासन दो, शांति दो, बोलो। कभी प्रलोभनों के चक्कर मे तो नहीं पडोगी, कभी मेरे नाम पर—अपने पूर्वजों के नाम पर कलङ्क-टीका तो नहीं लगाओगी?"

सुन्दरी ने दृढ स्वर मे कहा—"नहीं"

इसी समय रामशङ्कर ने आकर कहा—"भाई साहब, कहिए, कैसी तबियत है?"

चंद्रमाप्रसाद ने चौंककर कहा—"कौन, रामशंकर, अच्छा

में रात-दि- इस मौके पर आ गए।"
...कर ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से कहा—"कैसा मौका ?"

चंद्रमाप्रसाद ने कहा—"इसी मौके पर तुम्हारी जरूरत थी। ...मशंकर, तुम जानते हो, मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ मेरे। भाई न था, लेकिन तुमको पाकर मैं भाई का अभाव भूल गया हू। मैं तुम्हें भाई से भी अधिक प्यार करता हूँ। भाई हो, तो तुम हो। मित्र हो, तो तुम हो। आज से कुछ दिन पहले मैंने तुम्हें एक भार देना चाहा था, लेकिन मैंने उस समय कुछ कहा नहीं था, उस समय कुछ मेरे मन मे भी आशा थी। मैं समझता था, शायद मेरी बीमारी अतिम दशा तक नहीं पहुँची। लेकिन अब मुझे मालूम होता है कि मै ससार में ।"

रामशकर ने बीच ही मे टोककर कहा—"भाई साहब !"

चद्रमाप्रसाद ने एक गहरी सांस लेकर रामशकर की बात को काटकर कहा—"रामशंकर, रोको नहीं। मुझे कहने दो। हाँ, मै कह रहा था कि मैं ससार मे कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। अब तुम्हारी बातें मुझे धोखे मे नहीं रख सकतीं। मैं अपनी दशा अच्छी तरह समझता हूँ। खैर ! हाँ, तो मैं थोडे दिनो का मेहमान हूँ। तुम्हारी भाभी अभी नवयौवना है, अनभिज्ञ है। ससार क्या चीज है, नहीं जानतीं। जान भी कैसे सकती है। ये इनके खेलने-खाने के दिन हैं। गृहस्थी के फेर म तो पडीं नहीं। इनके लिये संसार मेरे बाद शून्य होगा। जब मैं इनकी दशा को सोचता हूँ, तो मेरा मन कॉप जाता है। मेरे बाद कोई इनकी दशा को देखने वाला चाहिए। कोई इनको कुमार्ग से बचाए रहे। सदा

सत्पथ पर चलाए रहे। मा से मुझे कुछ भी उम्मीद नहीं। वह भी कितने दिनों की है। मेरे बाद जितने दिन जी जायँ, उतने दिन गनीमत समझो। फिर उनके बाद इनको देखने वाला कौन होगा? कोई नहीं। इसीलिये मैं तुमको यह भार दे जाना चाहता हू। मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है, और तुम भी शायद इस कठिन भार को लेने मे किसी किस्म की हिचकिचाहट प्रकट नहीं करोगे।"

इतना कहकर चद्रमाप्रसाद रामशकर की ओर देखने लगे। रामशकर की आँखों मे आँसू भरे हुए थे। वह भी चद्रमाप्रसाद के जीवन से निराश हो चुके थे, लेकिन अपने प्राणोपम मित्र को खुश करने या उनकी चिंता को दूर रखने के लिये सदा ऊपरी मन से खुश रहते। हमेशा चद्रमाप्रसाद से छेड़-छाड़ किया करते। लेकिन चद्रमाप्रसाद की आज की बातों को सुनकर तथा देखकर उनके जीवन से वह भी निराश हो गए। उन्होंने पृथ्वी को अपने पैर के नाखूनों से खुरचते हुए कहा—"भाई, आप जो भी मेरे लिए काम दे जायेंगे, मैं सदा उसे ठीक तौर पर करने का यत्न करूँगा। भाभी क्या मेरे लिए दूसरी हैं। वह मेरी मा है।"

चद्रमाप्रसाद के मलिन चेहरे पर खुशी के लक्षण प्रकट होने लगे। उन्होंने सप्रेम रामशकर का हाथ अपने हाथ मे लेकर दबाते हुए कहा—"भाई रामशकर, मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। तुम भी सुखी रहो। भगवान से यही मेरी प्रार्थना है। भगवान् तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें सन्मार्ग पर रक्खे। मेरे

सिर से एक भयानक बोझ हट गया। रामशंकर, मैं नहीं जानता कि मैं किन शब्दों में तुम्हें धन्यवाद दूँ।"

रामशंकर ने कहा—"भाई साहब, आप मुझ पर विश्वास करके जो भार दे रहे हैं, उस भार को मैं सहर्ष अपने सिर लेता हूँ। आपने जो विश्वास किया है, मैं कभी उसका अनुचित व्यवहार नहीं करूँगा।"

चंद्रमाप्रसाद के नेत्र आनन्द से चमकने लगे।

रामशंकर ने सुंदरी के पैरों पर हाथ रख कर कहा—"भाभी, आज से तुम मेरी मा के तुल्य हो। मैं तुम्हारे चरणों की कसम खा कर कहता हूँ कि मैं तुम्हें सदा इसी दृष्टि से देखूँगा। और तुम भी मुझे संतानवत् जानना।"

चंद्रमाप्रसाद की आंखों से कृतज्ञता के आँसू निकलने लगे।

[३]

चंद्रमाप्रसाद न बचे। उन्हें महाराज यमराज के यहाँ जाना ही पड़ा। लेकिन जाते वक्त वह निश्चिंत थे। वह अपना वह अमूल्य भार अपने चिरविश्वासी रामशंकर के हाथों में सौंप गए थे, जिसकी चिन्ता उन्हें सदा रहा करती थी। उन्होंने अपना प्राण अपनी स्त्री की गोद में छोड़ा। सुंदरी की आँखों से अजस्र आँसुओं की धारा बह रही थी, और रामशंकर? रामशंकर सौम्य थे, शांत थे, लेकिन आँखों में आँसू भरे हुए थे। अंतिम बार चंद्रमाप्रसाद ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—"रामशंकर अपनी प्रतिज्ञा भूल मत जाना। इस का भार तुम्हारे ऊपर

रहा। रामशकर ने फिर एक बार अपनी प्रतिज्ञा दोहरा दी, और बेचारे चद्रमाप्रसाद चले गए। हॉ, सदा के लिए चले गए।

अभागिनी चद्रमाप्रसाद की मां के ऊपर वज्र टूट पडा। अभागिनी का अमूल्य माणिक्य जिसको उस ने धूप से, सर्दी से बचा कर अपनी छाती में लगाकर इतना बड़ा किया था, वही धन उसका चला गया। अभागिनी के रोने के सिवा और कुछ चारा न था। वह रो-रोकर अपने दिन काटने लगी। उसको जीवन से स्पृहा न थी, संसार से नाता न था—और अगर कुछ था, तो वह सुंदरी तक। नौजवान और खूबसूरत बहू को लेकर बडी आफत मे पडी। वह कहती कि अगर यह अभागी न होती, तो मैं भी निश्चिंत होकर काशी-वास करती, लेकिन इसको लेकर मैं कुछ भी नहीं कर सकती। ससार तो बिगड ही गया, अब परलोक भी बिगड़ेगा। सुंदरी के बाप के कुल मे भी कोई न था। मा मर ही चुकी थी। बाप थे, लेकिन वह भी चद्रमाप्रसाद की मृत्यु के साल-भर पहले गगा-लाभ कर चुके थे। अभागिनी सु दरी न-जाने कौन-सा फूटा भाग्य लेकर ससार में आई थी।

चद्रमाप्रसाद को मरे हुए चार महीने बीत गये। हँसते हुए दिन आए, और हँसते ही चले गए। लेकिन सु दरी सूखकर कॉटा हो गई थी। एक तो पति-शोक और फिर दूसरे सासजी की घुडकियॉ-धमकियॉ और आक्षेप। विधवा का जीवन कितना दु खमय है, भगवन !

सध्या के चार बज चुके हैं। आज सुदरी ने अभी तक कुछ

खाया नहीं। आज सुबह ही सासजी ने कुछ कठोर बातें कह डाली थीं, बेचारी की रोते-ही-रोते दोपहर बीत गई। फिर सो गई। रोने के बाद नींद आती है। अभागिनी सो गई। जब नींद उचटी, तो चार बज चुके थे। उठकर विगत घटनाएँ सोचने लगी। उन सुखमय दिनों की मधुर स्मृति ही को याद करके अपने दुख को कम कर लेना चाहा। एकाएक सास जी ने आकर कहा—"बहू, आज तुमने अभी तक खाया नहीं ?"

सुंदरी ने चौंककर कुछ रुँधे गले से कहा—"नहीं अम्मा जी ! सो गई थी, अभी उठी हूँ।"

सुंदरी के बदन से सारी गिर पड़ी थी। एक-एक हड्डियाँ दिखलाई दे रही थीं। उसको ऐसा अन्यमनस्क और बेहोश देखकर सासजी ने कहा—"बहू, आज क्या है ? खाया क्यों नहीं ?"

सुंदरी की गड्ढे में घुसी हुई आँखों से अश्रु-धारा निकलने लगी। वह सूखी देह और हड्डियों को देखकर वृद्धा का मन कुछ द्रवित हो गया था, और फिर आँसू देखकर उसके भी दुखी मन में और आघात लगा। आज पहले-पहल उसने सप्रेम सुंदरी के शरीर पर हाथ फेरते हुए कोमल, स्निग्ध अवरुद्ध कंठ से कहा—"बहू ! इस बुढ़िया पर अभिमान करके नहीं खाया ? मैं ही कितने दिनों की हूँ। मेरे जी का कुछ ठीक नहीं है। मैं तो एक तरह से पगली हो गई हूँ। मैं जो कहा करूँ, उस पर कभी ध्यान न दिया करो।"

सास की ये स्नेह की बातें सुनकर सुंदरी का जी भर आया, वह ज़ोर से रो पड़ी। सास ने उसको अपनी छाती से लगाकर

कहा—"वहू, रोओ नहीं। रोने से क्या होगा। तुम भी लुट गई, और मैं तो कंगाल हो ही गई। हम-तुम दोनो एक दूसरे को देख-कर लाओ अपने दुख को भूल जाये। ससार मे जब रहना है, तो वगैर खाए काम नहीं चलने का। उठो, चलो खा आओ जाकर"।

सुंदरी ने रोते-रोते सास के पैरों पर अपना सिर रख दिया। हिचकियाँ लेते हुए कहा—"मा, मैं वड़ी अभागिनी हूँ। पैदा होते होते ही मा को खा गई, विवाह के वाद पिता को और अव अप . . .।" अभागिनी और आगे न कह सकी, वडी जोर से रो पड़ी।

वृद्धा ने कहा—"वहू, जो होना था, वह हो गया। सव करम-दोष है। धीरज धरो। भगवान् को याद करो। उनके सिवा कुछ और उपाय नहीं है।"

सु दरी ने फिर कहना शुरू किया—"माजी, मैं नहीं जानती कि मैं अपने को क्यों नहीं खा जाती ? मुझे ही न-जाने क्यों काल नहीं घसीटता ?"

वृद्धा ने एक मीठी झिडकी देते हुए प्यार से कहा—"यह कोई कहता है वहू। हाँ, विधवा को तो मरना ही ठीक है, लेकिन आदमी तभी मरता है, जब काल आता है। कोई मनाने मे नहीं मरता। जब उनका पीछा हुआ था, तब कितना ही मनाया, न मरी, और जब हमारा लाल चला गया, तब से मना रही हू, लेकिन मरने की कौन कहे, वुखार तक नहीं आता। हाय ! मेरा लाल वुखार मे कुढ़-कुढकर मरा था, और मुझे वुखार आना ही नहीं।"

वृद्धा रोने लगी। सुंदरी भी रोने लगी। रोते-रोते जब जी हलका हुआ, तो दोनों नीचे उतरीं।

उस दिन के बाद से सास का व्यवहार न-जाने क्यों बहू की ओर अच्छा होने लगा। सुंदरी का शोक दिन-पर दिन कम होने लगा। वह खा-पीकर फिर स्वस्थ हो गई। गया हुआ यौवन क्रमश फिर लौट आया। गालों पर लालिमा झलकने लगी। मुहल्लेवाली औरतों से गप्प कर दिन काटने लगी। चंद्रमाप्रसाद की स्मृति धीरे-धीरे विस्मृति के अंधकार में विलीन होने लगी। सुंदरी भी बदल गई। सुंदरी अब वह कृशांगी, मलिन-वसना, रुक्षकेशिनी सुंदरी नहीं रही।

बल्कि आजकल सुंदरी अति सुंदरी थी। वही चंचलता, वही प्रसन्नता, वही चितवन, जो चंद्रमाप्रसाद के जीवित रहने पर थी, वही अब धीरे-धीरे सब आ गई थी। वृद्धा सास ने परवा करना एक तरह से छोड़ ही दिया था। वह अपने ही शोक में दिन-भर मगन रहा करती। भगवान् से रात-दिन प्रार्थना किया करती कि देव, अब तो मुझे इस नरक से छुड़ा। सुंदरी क्या कभी अपने मृत स्वामी की याद नहीं करती थी? नहीं, ऐसा कहना भूल होगा। वह कभी-कभी याद करती, और जब याद आती तो, रोती खूब।

दोपहर का समय है। दुःख से मर्माहता विधवा सुन्दरी पड़ोस की एक सखी के यहाँ पहुँची। सखी का नाम था गौरी। गौरी बाबू राधामोहन की स्त्री थी। वह भी सुंदरी की हमजोली सखी थी। बाबू राधामोहन स्थानीय बैंक में १२५) मासिक के

कर्मचारी थे। बाबू राधामोहन को इस मुहल्ले में आए तरह जब ही चार महीने बीते थे, लेकिन इन्हीं दिनों भी गौरी और सुंदरी में बहुत बहनापा हो गया था।

सुन्दरी को देखकर गौरी उठती हुई बोली—"अरे, आज न-मालूम किसका मुँह देखकर उठी थी, जो आप तशरीफ लाई।"

सुंदरी ने हँसते हुए कहा—"अपने उन्हीं का मुँह देखकर उठी होगी।"

गौरी ने एक लज्जा-भरी मुस्कान-सहित कहा—"उनका मुँह तो रोज ही मैं देखकर उठती हूँ। आओ, बैठो।"

सुन्दरी जाकर पलंग पर, गौरी की बगल में, बैठ गई।

गौरी ने कहा—"बहन, कहो, अच्छी तो हो?"

सुंदरी ने एक ठंडी साँस लेकर कहा—"हम विधवों की भली चलाई। अच्छी रहे, तो बला से, न अच्छी रहे तो बला से। अभागा कोई भी नहीं पूछता।"

गौरी ने किंचित् मलिन मुख से कहा—"बहन, ईश्वर की इच्छा में कुछ चारा नहीं है। जो वह कराएगा, करना ही पड़ेगा।"

सुंदरी ने कहा—"ईश्वर की भी तुमने भली चलाई! बहन मेरा तो विश्वास उसी दिन से ईश्वर पर से, देवी-देवताओं पर से, उठ गया, जिस दिन उन्होंने अपने प्राण...।"

अभागिनी सुंदरी और कुछ न कह सकी। उसकी आँखों में आँसू भर आए।

गौरी उसकी आँखें को पोंछते हुए बोली—"यह भी कोई बात है ? ईश्वर की इच्छा ही थी, जो ऐसा हुआ। ईश्वर पर विश्वास न करोगी, तो किस पर करोगी ? वही हम लोगों का एक सहारा है।"

सुंदरी ने कहा—"वह सहारा तुम लोगों के लिये है। मेरे लिये नहीं। मैंने कितने देवों की पूजा मानी थी, कितनी देवियो के चरणों पर माथा घिसा था, कितने ही दिन भूखे रहकर व्रत किया। रात-दिन प्रार्थना करती कि वह अच्छे हो जायँ, लेकिन न हुए। मेरे सब पूजा-व्रत धरम-करम निष्फल गए। ऐसे अधे-बहिरे ईश्वर से मेरा कुछ भी सरोकार नहीं है। मेरा तो विश्वास है कि ईश्वर करके कोई चीज़ दुनिया मे नहीं है। सिर्फ लोगो का यह भ्रम है, या कवियों की कल्पना।"

गौरी—"अगर ईश्वर नहीं है, तो संसार का काम कैसे चलता है ?"

सुंदरी तुम्हीं बताओ, कौन काम ईश्वर करता है ? संसार का जितना-काम-काज है, सब आदमी करता है। खाना-पीना, सोना-जागना, रुपया पैदा करना, दान, दया, धर्म, सभी तो आदमी करता है, ईश्वर कहाँ करने आता है।"

गौरी—"लेकिन पानी बरसाना, न बरसाना, जिलाना-मारना, सुखी रखना, दुःखी रखना—यह कौन करता है"

सुंदरी—"यह सब अपने आप होता है। ईश्वर कुछ नहीं करता। गरमी से भाप बनी, वही बादल होकर पानी बरसती है

यह शरीर एक मशीन है। जैसे मशीन का एक एक पुरजा बिगड़ जाता है, तो मशीन का चलना बन्द हो जाता है, इसी तरह जब इस शरीर में भी कोई पुरजा बेकाम हो जाता है, तो मनुष्य भी बेकाम हो जाता है, यानी साँस लेना बंद हो जाता है, इसी को मनुष्य मरना कहते हैं। रहा सुख-दुःख, वह तो स्थितियों पर निर्भर है ईश्वर का ईश्वरत्व तो मै कहीं नहीं देखती। यदि ईश्वर होता, तो कितनी स्त्रियाँ, जिन्होंने अपनी जान में कोई पाप नहीं किया, प्रसव की पीडा में क्यों मर जातीं? यदि ईश्वर होता, तो इतने अबोध, निष्पाप शिशु क्यों अपनी माता की गोदी सूनी करके चले जाते। यदि ईश्वर होता तो संसार में इतना अत्याचार, पाप भी नहीं होता। क्या यह ईश्वर है कि एक आदमी भूखों मरे, और एक आदमी सुख ... ... गा। ... कि वे बालिकाएँ जिन्होंने अभी तक यह भी ... का ... खोलते क्या चीज है, जिन्होंने पति का मुख ... बडी-बडी चिट्ठियाँ है। अपना सारा जीवन काटें, यदि तुम्हारती थी, और रोज एक है, तो ऐसे ईश्वर को दूर से प्रणाम।" चिट्ठी में जरा-सी भी

गौरी ताज्जुब से सुंदरी की ओ... था।"

रही थी कि क्या यह वास्तव में व... खोलकर पढना शुरू कर या और कोई उसने कहा—"... आ था। प्रेम गद्गद-गद्गद सीखा। अब तो तुम बडी लेक्चर मा... थी—अनमनी होकर। ईश्वर में विश्वास न करो, मैं तो क... लगी. जिन्हें चन्द्रमाकस्मात ताकत नहीं कि मैं तुम्हारे प्रश्नों क... हा—"बड़ी अच्छी चिट्ठियाँ

जानती हूँ कि ईश्वर है।"

सुंदरी—"तुम जानती हो, विश्वास करती हो, तो करो। तुम सुखी हो, तुम्हारे लिये ईश्वर है, मैं दुखी हूँ, मेरे लिये ईश्वर नहीं है।"

गौरी—"नहीं यह तुम्हारी भूल है। ईश्वर सबके लिये है। वह दुखियों के लिये तो और है क्योंकि वह दीन-बन्धु है। जिससे संसार घृणा करता है, उसे वह प्यार करता है, संसार में जिसका कोई रक्षक नहीं, उसका वह रक्षक है। खैर हटाओ, भी इन बातों को, तुम नहीं मानती, न मानो। कहो, तुम्हारी सासजी तो अच्छी तरह है?"

सुंदरी—"हाँ, अच्छी ही हैं। कहो, आजकल तुहारी कैसी कटती है?"

यह भ्रम है, या कवियों की —कुछ पूछो न बहन! उनके मारे तो

गौरी—"अगर ईश्वर न ...ता। कल कहा था कि मुझे लखनऊ चलता है?" इसी बात पर रूठ गए। बोलते

सुंदरी तुम्हीं बताओ, कौन ...जाओ, मुझसे पूछने का क्या काम। का जितना-काम-काज है, सब ...म हमें प्यार करती होतीं तो जाने सोना-जागना, रुपया पैदा करना

आदमी करता है, ईश्वर कहाँ करे ...ने अतीत का एक चित्र खिंच गया,

गौरी—"लेकिन पानी बरस...ी, ठीक यही शब्द चन्द्रमाप्रसाद मारना, सुखी रखना, दुःखी रखन... उससे ऐसे प्रेम की अभिमान भरी

सुंदरी—"यह सब अपने आ... ...सकी आँखों में आँसू छलछला करता। गरमी से भाप बनी, वही वा...

आए। उनको उसने छिपाकर कहा—"तब-तो तुम्हे करते हैं।"

गौरी ने साभिमान कहा—"जान तो ऐसा ही पड़ता है। उन्हे मेरे बगैर पल-भर भी चैन नहीं पडती। आफिस से जब आते हैं, घर ही पर रहते है। मेरे पीछे-पीछे घूमा करते है। दोस्तों के आने पर कहला देते है कि हैं नहीं। मैं कितना ही कहती हूँ कि जाओ, वह जाते ही नहीं। कहते है, अगर तुम्हे बडी उनसे सहानुभूति है, तो तुम चली जाओ मेरी एवज मे। मैं भी चुप हो जाती हूँ। देखो ठहरो, मै तुम्हें उनके खत दिखलाती हू, जिनको उन्होंने शादी के बाद लिखा था। ठहरो,मैं ले आऊँ।"

यह कह कर गौरी चिट्ठियाँ निकालने चली गई। सुन्दरी अपनी और गौरी की दशा का मिलान करने लगी।

गौरी ने आकर एक बहुत बडा चिट्ठियो का बंडल खोलते हुए कहा—"देखो बहन, यह कितनी बडी-बडी चिट्ठियाँ है। रोज मेरे पास एक चिट्ठी आया करती थी, और रोज एक चिट्ठी जाया करती थी। अगर एक चिट्ठी मे ज़रा-सी भी देरी हो गई, तो दूसरे दिन तार आता था।"

यह कहकर गौरी ने एक चिट्ठी खोलकर पढना शुरू कर दिया। चिट्ठियो मे सजीव प्रेम भरा हुआ था। प्रेम शब्द-शब्द से चुआ पडता था। सुन्दरी सुन रही थी—अनमनी होकर। उसके सामने भी वे चिट्ठियाँ आने लगीं, जिन्हे चन्द्रमाप्रसाद भेजा करते थे। उसने काँपकर कहा—'बडी अच्छी चिट्ठियाँ

जानती हूँ कि, हाँ, तो कल चलोगी गंगा नहाने ?"

सुंदरी ने पूछा—"कल क्या है ?"

सुंदरी—"कल माघी है। यह भी तुम नहीं मालूम।"

गौरी "हाँ, भूल गई थी। हाँ, चलूँगी, लेकिन मैं वगैर पूछे कैसे कह सकती हूँ। अच्छा, पूछ लूँ। मैं पूछकर नौकर से कहलवा दूँगी। हाँ, तो सुनो।"

सुंदरी—"आज अब रहने दो बहन ! कल सुनूँगी। आज जाती हू। सासजी बैठी होंगी। अकेले तो उनका भी जी घबराता होगा। अच्छा, जाती हूँ।"

यह कहकर सुंदरी उठ खड़ी हुई। गौरी ने कहा—"अच्छा, तो जाओगी ?"

सुंदरी—"हाँ, फिर आऊँगी।"

सुंदरी गौरी के भाग्य को सोचती हुई चली गई।

[४]

विधवा के हृदय में जब एक बार भी किसी दूसरे का सुख चुभ जाता है, यानी वह किसी के सुख-सौभाग्य की बातें सोचने लगती है, यही उसका पाप-मार्ग की ओर पहलेपहल पैर बढ़ाना होता है। वह सोचती है कि मैं किस अपराध से इस सुख से वंचित हो गई। अगर कुछ अपराध किया था, तो उसका दंड तो मिल गया। इतने दिन उसका प्रायश्चित्त किया, अब मुझे फिर इस सुख के अनुभव करने का क्यों अवसर नहीं मिल सकता ?

सुंदरी एक पढी-लिखी शिक्षिता नारी थी । चद्रमाप्रसाद स्त्री-शिक्षा के वडे प्रेमी थे, उन्होने स्वय वडी मेहनत से सुदरी को शिक्षित किया था । सुंदरी के सामने इंगलैड, अमेरिका आदि देशो की रीति-रिवाज याद आने लगे । वह सोचने लगी कि वहाँ की स्त्रियाँ तो विधवा होने पर भी विवाह कर सकती हैं । क्योंकि उनके लिये कोई ऐसी बाधा नहीं है । उन्होंने भी वही पाप किया होगा, जो यहाँ की विधवा स्त्रिया ने किया होगा । तभी तो दड दोनो को एक ही मिला, यानी दोनो विधवा हो गईं । फिर क्या वात है कि उनको विवाह का अधिकार प्राप्त है, और यहाँ नहीं । उत्तर होगा कि इनका समाज दूसरा है, और हमारा समाज दूसरा । उन लोगों का समाज विधवा-विवाह उचित समझता है और यहाँ का समाज अनुचित । तो फिर यह व्यवस्था समाज ने बनाई है, ईश्वर ने नहीं । समाज को बनाने वाले थे, और हैं कुछ खुदगरज पुरुष । उन्होंने जितने नियम अपने लिये बनाए, वे सब तो नरल हैं, और जो चाहे वे कर सकते हैं । लेकिन अगर बाधा है, तो अभागिनी स्त्रियो को । पुरुष वश चलाने की आड मे एक नहीं, दो नहीं, चार-पॉच विवाह कर सकते है, वश रहते भी पुन व्याह कर सकते हैं, समाज उन्हें आज्ञा देनी है, लेकिन अभागिनी नारियो को ही अपनी इच्छा, अपनी कामना का दमन करना पडता है । वे स्त्रियाँ जो अपने को नहीं रोक सकतीं, अपनी वासना को नहीं दवा सकतीं यह आवश्यक है कि वे दूसरा

विवाह करके सुख-शांति के साथ जीवन व्यतीत करें, न कि वे छिपकर पाप-मार्ग मे प्रवेश करें। भ्रूण-हत्या, चरित्र-हीनता का पाप क्यों व्यर्थ में लगे ? ससार उन्हें घृणा से देखे, और वे ससार को खुदगरज और घृणित समझे।

सुंदरी के मन मे हमेशा यही खयाल उठा करते। जब वह अकेली बैठती, तब ऐसी ही बातें सोचती। ससार के प्रलोभन उसे अपनी ओर घसीटते, और वह भी उनकी ओर धीरे-धीरे अनजान अवस्था में खिंची चली जा रही थी।

रामशकर ने घर आना न छोड़ा था। वह रोज आते और घंटों बातें किया करते। सुख-दु ख की, देश की, तमाम तरह की बातें शाम को हुआ करतीं, कभी सुंदरी की सास बैठती और कभी न बैठती। उसे रामशकर के ऊपर पूर्ण विश्वास था। रामशंकर का चरित्र भी बडा निर्मल और उच्च था।

उसी दिन शाम को सुंदरी ने रामशकर से कहा—"भैया, ईश्वर और भाग्य क्या चीज है ?"

सुंदरी रामशकर को भैया कहकर पुकारती थी।

रामशकर—"ईश्वर क्या है, इसका उत्तर बहुत कठिन है। यहाँ पर मतभेद भी है। अतीत काल से और इस समय तक दो मत रहे हैं। एक मत तो यह कहता है कि जो कुछ होता है स्वयं होता है, और ईश्वर कुछ नहीं है, अगर कहीं है, तो जड पदार्थ है। उसका असर (प्रभाव) हम पर कुछ नहीं हो सकता। दूसरा मत यह कहता है कि ससार का छोटे-से-छोटा

काम ईश्वर की इच्छा से होता है। बगैर उसकी मरजी के एक पत्ता नहीं हिल सकता। लेकिन मेरा तो विश्वास है कि ईश्वर एक वह अदृश्य शक्ति है, जिसका अस्तित्व सब में है, और संसार को सुचारु रूप से परिचालित करता है। भाग्य, पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों का फल है।"

सुंदरी—"ईश्वर का भाग्य पर अधिकार है ?"

रामशंकर—"भाग्य पर अधिकार है, और नहीं भी। कर्म-फल तो अवश्य ही भोगना होगा. लेकिन अगर उसका प्रायश्चित्त पूरे रूप से किया जाय, तो वह कर्म-दंड को सहज बना देता है, यानी Rigorous imprisonment (सख्त कैद) के बदले Simple imprisonment (सादी कैद) कर देता है। लेकिन कर्म-फल अवश्य भोगना पडता है।"

सुंदरी—"तो फिर एक तरह से ईश्वर की शक्ति कर्म के ऊपर नहीं है। कर्म भी ईश्वर की तरह बलवान् है।"

रामशंकर—"हाँ, कर्म एक अवश्य ही बडी शक्ति है। जैसा तुम करोगी, वैसा ही फल पाओगी।"

सुंदरी—"एक किसान एक खेत में अगर चना बोवेगा, तो चना ही काटेगा। चना बोकर गेहूँ नहीं काट सकता। चाहे जो करे, लेकिन चना गेहूँ में बदल नहीं सकता. यहाँ पर किसान खेतों का विधाता है। क्यों ?"

रामशंकर—"हाँ।"

सुंदरी—"तो फिर वह जो बीज खेत में डालेगा वही बीज

पैदा होगी। इसी तरह मनुष्य रूपी खेत में अगर किसान रूपी भगवान् सुबुद्धि डालता है, तो मनुष्य अच्छे काम करता है, और अगर वह दुर्बुद्धि डालता है, तो उसके अनुसार वह खराब काम करता है, इस तरह से भाग्य का बनाने वाला है ईश्वर, क्योंकि जैसा वह काम करावेगा, वैसे ही करना पड़ेगा। हम तो काम करते है, जो भी वह हमसे करवाता है। फिर उसका फल क्यों भोगना पड़े। जैसे यह तो किसान की बेवकूफी होगी, जो पहले तो चना बोवे, लेकिन उसे खाए नहीं, सडा डाले, यानी काम तो आप करे, और दंड दे चने को। यह कहाँ का न्याय है?"

रामशकर—"यहीं तो तुम भूल करती हो। ईश्वर काम नहीं करवाता, मनुष्य आप करता है। देखो, तुम अगर एक छोटे-से जानवर को मारने जाओ, तो तुम्हारे मन में कोई कहेगा, जीव-हत्या पाप है। तुम एक बार झिझकोगी, और अगर तुम्हारा Conscience एकदम मर नहीं गया है, तो न मारोगी, नहीं तो मार डालोगी।"

सुदरी—"Conscience ईश्वर-दत्त है?"

रामशकर—"हाँ! Conscience भले और बुरे पहचानने की कसौटी है।"

सुंदरी—"लेकिन मेरी समझ मे तो Conscience सिर्फ वह असर है, जो मनुष्य-हृदय पर समाज का पडता है, जिसमे वह पाला गया है। जैसे एक देहाती ब्राह्मण लीजिए और एक मुसलमान या अँगरेज लीजिए। मुसलमान या अँगरेज

खुशी के साथ अपनी मोछें बनवा डालेंगे, बल्कि उनका तो कर्जन-फैशन है, लेकिन एक उस हिंदू-बालक से जिसका पिता जीवित है, मोछें बनवाने के लिए कहिये, वह नहीं बनवाएगा। यह समाज का असर है या ईश्वर का? एक समाज बुरा समझता है, और एक अच्छा। लीजिए, एक मुसलमान शौक से गौ को मार डालेगा, क्योंकि वह एक ऐसे समाज में पला है, जहाँ गौ मारना पाप नहीं है। एक हिंदू कभी नहीं मारेगा, क्योंकि वह एक ऐसे समाज में पला है, जहाँ गौ-हत्या से बढ़कर कोई पाप नहीं है। तो फिर यह संस्कार समाज का प्रभाव है या नहीं?"

रामशंकर—"Conscience इन बातों में नहीं देखा जाता। देखो, मनुष्य जब दूसरे मनुष्य को मारने जाता है, तब वह शक्ति, जो उसे मारने से रोकती है, Conscience है। जिसको तुम कहती हो, वह Conscience नहीं है, बल्कि वह कुसंस्कार है।"

सुंदरी—"हो सकता है, वह कुसंस्कार हो, लेकिन मैं यह नहीं मानने को तैयार हूँ कि Conscience God given (ईश्वर-दत्त) है। यह तो समाज का ही प्रभाव है। आप मनुष्य को मारने के बारे में कहते हैं। देखिए Cannibals* मनुष्यों को, मारने की कौन कहे, खा तक जाते हैं। क्या उनमें

*Cannibal एक आफ्रिका में रहनेवाली जाति है, जो अभी तक मनुष्य का मांस खाती है, और जो अब धीरे-धीरे लोप हो रही है।

Conscience नहीं है। अगर है, तो क्यो ऐसा करते हैं? चोरी के बारे मे देखिए। चोरी करना पाप है। श्याम-देश में यह पाप नहीं गिना जाता, बल्कि एक चालाकी समझी जाती है। क्या वहाँ के आदमियो को Conscience देना ईश्वर भूल गया था?"

रामशकर—"यहाँ पर तुम फिर गलती करती हो। Cannibal में Conscience जरूर है, लेकिन वे इतने अविद्या के अंधकार मे पडे हुए हैं कि जानवरों की अपेक्षा इसीलिये अच्छे है कि उनका आकार-प्रकार मनुष्यो-जैसा है, नहीं तो वे आदमी नहीं, पशु हैं। पशुओं मे Conscience नहीं Instinct होता है। देखो, जैसे Instinct हर एक पशु मे होता है, वैसे ही Conscience भी हरएक आदमी मे होता है वगैर Conscience के कोई आदमी नहीं है।"

सुदरी—"यह मै कब कहती हूँ कि वगैर Conscience के कोई आदमी है, लेकिन यह ईश्वर-दत्त नहीं है। आप यह कहिए कि श्याम के लोग भी क्या Cannibals की तरह है। वे तो शिक्षित है।"

रामशकर—"यह प्रथा कभी थी, लेकिन अब नहीं है। ज्यों-ज्यो वे शिक्षित होते जा रहे हैं, त्यों-त्यो उनमें मे धीरे-धीरे यह कुप्रथा उठती जा रही है। अब उनका Conscience आगे यह करने के लिये आज्ञा नहीं देगा।"

सुदरी—"तो यह प्रभाव किसका पडा। समाज का या

ईश्वर का ? अगर ईश्वर-दत्त होता, तो उसका प्रभाव भी शुरू से पडता, उसमें भी वही ताकत होती, जो और सब ईश्वर-दत्त इंद्रियों मे। जैसे आँख का देखना। यह ईश्वर-दत्त है, और जब से मनुष्य पैदा होता है, तभी से देखने लगता है। वैसे ही Conscience प्राकृतिक मार्ग से जब अप्राकृतिक मार्ग की ओर आता, तो उसे वह मना करता, लेकिन ऐसा तो होता नहीं। आदमी का Conscience तभी रोकता है, जब वह कोई काम समाज के विरुद्ध करता है।"

रामशकर—"अच्छा, बुद्धि को ईश्वर-दत्त मानती हो। जैसे बुद्धि को उच्च करने से वह विकसित होती है, वैसे ही Conscience भी उच्च करने से उच्च होता है।"

सुदरी—"मै तो बुद्धि को ईश्वर-दत्त पदार्थ नहीं मानती। वह आदमी मे स्वय पैदा होती है। उसे ईश्वर-दत्त तो मैं तब मानती, जब आदमी मा के पेट से ही विद्वान् पैदा होता।"

रामशकर—"अच्छा, इसकी भी मिसाले मिलगी। मास्टर मोहन हारमोनियम बजाना ७ वर्ष की ही अवस्था मे सीख गए थे। सीख क्या, पूरे मास्टर थे। अगर ईश्वर-दत्त विद्या नहीं थी, तो फिर कैसे सीख गए ?"

सुदरी—"यों तो आजकल कुत्ते भी हिसाब जानते है। एनीबेसेंट के अनुसार तो यह है कि आदमी मे क्यों एक गुण जल्दी आ जाता है ? चूँकि वह उसका जन्म-जन्मांतर अभ्यास करता है। इसीलिए किसी एक गुण का विकास होता है

उम्र मे हो जाता है। यह भी मनुष्य के परिश्रम का फल है, ईश्वर ने क्या किया ? मेरी समझ मे ईश्वर कुछ नहीं है, न उसकी कोई शक्ति है। हमीं सब कुछ हैं, हमीं ईश्वर हैं, और हमीं देवता हैं। हमीं काम करते और हमीं उसका फल पाते है। एक हिंदी-कवी ने कहा है—"आपने करम करि उतरेंगे पार जो पै, हम करतार, करतार तुम काहे के ?" सो वहुत ठीक कहा है। हमीं करतार हैं, और दूसरा करतार महज काल्पनिक है, और कुछ नहीं।"

रामशंकर—"यह तुम्हारा खयाल गलत है। अगर ईश्वर न होता, तो आज के दिन दुनिया विशृंखल हो जाती।"

सुदरी (हॅसती हुई)—"विशृंखल कव नहीं है। उसका काम कहॉ ठीक रूप से चलता है। सभी जगह तो हाहाकार, अत्याचार-अनाचार देख पडता है। हम ईश्वर को कहॉ माने ?"

रामशकर—तुम्हारी ऑखो के सामने माया का एक विराट् पर्दा पडा हुआ है, अभी तुम नहीं देखतीं। जब तुम्हारे मन से यह द्वेप दूर हो जायगा, तव तम देखोगी ईश्वर को, और कहोगी, हॉ, ईश्वर है। मुझ मे इतनी शक्ति नहीं कि मैं उसको प्रत्यक्ष दिखा दूॅ। यह परमहंस स्वामी रामकृष्ण ही मे था जिन्होंने विवेकानन्द-जैसे कट्टर नास्तिक को भी ईश्वर दिखाकर अपना चेला कर लिया था। यह विपय वडा गहन है। अच्छा तम अव गीता पढो। तम्हारी शकाएँ वहीं पर

समाधान हो जायेगी और तभी से तुम ईश्वर पर विश्वास भी करने लगोगी।"

सुंदरी—"अच्छा, यह कहिये कि विधवा के लिये नियम किसने बनाए"

रामशंकर—"समाज ने।"

सुंदरी—"समाज किसने बनाया"

रामशंकर मनुष्यों ने।"

सुंदरी—"पुरुषों ने कि स्त्रियों ने"

रामशंकर—पुरुषों ने।"

सुंदरी—"तो फिर क्या जरूरी है कि हम स्त्री लोग खुदगरज पुरुष-जाति के बनाये हुए नियमों का पालन करें, और पालन करने के लिये बाध्य की जायें"

रामशंकर—"खुदगर्ज पुरुष कैसे"

सुंदरी—"यह खुदगरजी नहीं है तो क्या है? पुरुष चाहे हजार विवाह कर ले, एक स्त्री रहते भी जो चाहे सो करे। वह तो ठीक है, लेकिन अगर बेचारी स्त्री एक स्वामी के मरने पर दूसरा विवाह करने के लिये तैयार हो, तो वह पाप है।"

रामशंकर—"बात यह है कि हिंदू-समाज ने स्त्रियों को बहुत बड़ा आसन दिया है। वे पवित्रता की मूर्ति मानी गई हैं। अगर वे पाप करेंगी, तो उनकी सन्तान पुरुष-जाति है, बिल्कुल नष्ट-नष्ट हो जायगा। इसीलिये विधवाओं के लिये यह नियम बना

गया है कि वह सदा पवित्रता की मूर्ति बनी रहे। हिंदू-धर्म गर्व से अपना सिर उठाकर और धर्मों से कहे कि देखो, मेरे यहाँ ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो एक ही स्वामी की चिंता में अपना जीवन व्यतीत कर देती हैं, और तुम्हारे यहाँ नहीं हैं।"

सुंदरी—"तो यह उच्च आदर्श हजारों विधवाओं का बलिदान करने के बाद रक्खा जाता है।"

रामशंकर इसमें त्याग है। त्याग से बढ़कर तपस्या और कोई नहीं है। त्याग करो, तो ईश्वर भी तुमसे प्रसन्न होगा।"

सुंदरी—"लेकिन जो स्त्रियां त्याग नहीं कर सकतीं वे क्या करें।

रामशंकर—"इसीलिये तो यह व्यवस्था की गई है, जिसमें वे त्याग करना सीखें। तपस्या कोई हलवा-पूरी नहीं है, लोहे के चने हैं।'

सुंदरी—"किंतु यह त्याग का पाठ स्त्रियों के लिये ही क्यों पुरुष क्यों न इसे　　।" इसी समय सुंदरी की सास ने आकर कहा—"अरे, बहुत रात बीत गई रामा! तुम्हारी बातें ही खतम होने नहीं आई। आज यहीं खाकर जाना, अच्छा। बहू, ले चलो, परसो, रामा यहीं खायगा।"

रामशंकर—"मुझे खाने में कुछ इनकार नहीं है, लेकिन घर का खाना खराब होगा।"

सुंदरी ने हँसते हुए धीरे से कहा—"हाँ, और घर में मालकिन खफा होंगी।" यह कहकर उसने एक बंकिम कटाक्ष किया, और मुस्करा द　।"

-खडे बातें करके

रामशंकर ने आज सुंदरी में यह एक नया

वह कांप उठे। वह किसी भावी भयकर आशंका से सिहर

उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से देखा, सुंदरी अब भी धीरे-धीरे उन्हीं की ओर देखकर मुस्किरा रही थी। उन्होने अपनी आँखे नीची कर लीं। सुंदरी भी धीरे-धीरे चली गई।

सुंदरी की सास ने कहा—"रामा, चल, तू खडा क्यों है ? ग्यारह बज गए। क्या तुझे अभी तक भूख भी नहीं लगी ?"

रामशकर ने अनमने तौर पर कहा—'भूख तो लगी है मा ! अच्छा, चलो, खा ही आवें।'

रामशकर सुंदरी की सास के पीछे-पीछे चले गए।

[५]

अधःपतन एक सीढी है। चरित्र के बाद ही चरित्र-हीनता अधःपतन की सीढी शुरू होती है। एक पैर जहाँ नीचे की ओर बढा दिया, फिर दूसरा पैर भी जरूर उसी सीढी पर आ जायगा, और उसके बाद वह जल्दी-जल्दी नीचे की ओर बढता ही जायगा, रुकेगा नहीं।

सुंदरी उसी सीमा में आ गई थी। वह पहली सीढी उसी दिन उतर चुकी, जिस दिन उसने गौरी के भाग्य की बात सोची थी। फिर अधःपतन का मार्ग उसके लिये खुल गया। उसने तर्क-वितर्क करके रामशंकर के मन की थाह ली। उसे विदित हुआ कि इस मनुष्य को जीतना एकदम असम्भव तो नहीं लेकिन मुश्किल जरूर है। उसने मन-ही-मन व्यूह में बांध लेना सोचा।

गया है कि वह
से अपना ...स दिन उसने हँसते हुए वह व्यग्य प्रहार किया था,
स्त्रिए ...फिर उसने उस दिन से व्यंग्य की मात्रा और बढ़ा दी।
...मशंकर भी सब जानते हुए अनजान का ढोंग रचने लगे। क्योंकि मनुष्य प्रेमी की दृष्टि से ही जान जाता है कि वह उससे प्रेम करता है।

रामशंकर दो-तीन दिन नहीं आये। चोथे दिन आये। उनको देखकर सुंदरी ने हँसते हुए कहा—"अहा हा! आज न मालूम कहाँ भूल पड़े! तीन-तीन दिन नहीं आये! हम पर नाराज हुए थे, या श्रीमती जी ने आप को आज्ञा नहीं दी थी"

रामशंकर ने हँसते हुए कहा—"जरा काम था। जानती हो, संसार में झंझट लगे ही रहा करते है। कई एक झंझटों में फँसा था।"

सुंदरी—"वाह, पहले क्या झंझट नहीं लगे रहा करते थे?"

रामशंकर—"क्या नहीं लगे रहा करते थे, लेकिन अब की के झंझट पहले-से नहीं थे, बल्कि उनमें कुछ बढ़कर थे।"

सुंदरी ने घबराए हुए स्वर में कहा—"खैरियत तो है?"

रामशंकर ने हँसते हुए कहा—"घबराओ नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। एक तो मेरे यहाँ साले साहब बिदा कराने आए थे।"

सुंदरी—"ओहो, समझ गई। श्रीमतीजी जानेवाली थीं, इसीलिये नहीं आ सके। हाँ, मैं कौन हूँ, जो यहाँ आओगे।"

रामशंकर ने कहा—"माजी कहाँ है?"

सुंदरी—"ऊपर है। आओ, या खड़े-ही-खड़े बातें करके जाना चाहते हो ? अभी तक गई नहीं क्या ?"

रामशंकर—"नहीं, वह तो कल ही चली गई थी।"

सुंदरी ने फिर हँसते हुए कहा—"अच्छा, तभी ज़रा गरीबों की सुधि हो गई है।"

सुंदरी की सास ने ऊपर से पूछा—"कौन है बहू ! क्या लाला आया है ?"

सुंदरी ने कहा—"हाँ अम्मा ! न-मालूम कहाँ आज भूल पड़े।"

सुंदरी की सास छज्जे पर आ गई। "आओ बेटा, इतने दिनों से कहाँ थे ? आए क्यों नहीं ?"

रामशंकर ने कहा—"बात यह थी कि साले साहब आए थे, इसी लिये नहीं आ सका।"

सुंदरी की सास—"तो क्या बहू गई ?"

रामशंकर—"हाँ कल गई।"

सुंदरी की सास—"अब कब तक आएगी ?"

रामशंकर—"फागुन में हमारी साली की शादी है। इसी लिये गई है, शायद बैसाख तक आना हो।"

सुंदरी की सास—"ऊपर आओ न, नीचे क्यों खड़े हो।"

सुंदरी ने रामशंकर की ओर हँसते हुए कहा—"बात यह कि वह खड़े-ही-खड़े बातें करके जाना चाहते हैं।"

फिर बहुत धीरे से कहा, जिसमें ऊपर सास जी न [illegible] हो [illegible]
...—"बहू को चिट्ठी लिखना चाहते हैं।"

[illegible] हो

सु दरी की सास—"यह भी कोई बात है ? आज इतने दिनो बाद आए, बैठोगे भी नहीं !"

रामशकर—"अरे, बैठने के लिये तो आया ही हू ।"

यह कहकर रामशकर ऊपर चले गए । सु दरी भी उनके पीछे-पीछे चली । जीने मे चढते-चढते वह गिर पडी । दोनो हाथों से रामशंकर के पैर पकड लिए, रामशकर ने पीछे फिरकर देखा, और जल्दी से उठाने के लिये नीचे उतरे, सु दरी अभी तक उठी न थी । उसके हाथ को पकड कर उठाते हुए कहा—"क्या चोट लगी !"

सु दरी फिर भी न उठी । रामशकर ने उसे जोर से उठाया वह तब भी न उठी ।

इसी समय सास जी ने पूछा—"क्या हुआ रामा ! क्या गिर पडे ? चोट लगी ?"

रामशकर—"नहीं, मै तो नहीं गिरा, भाभी गिर पडी है ।"

सु दरी की सास जीने पर आई । उनको आया देखकर सुंदरी धीरे-धीरे उठी । उठकर कहा—"चढते वक्त धोती पैर मे फॅस गई, इसीलिये गिर पडी ।"

सास ने पूछा—"चोट कहॉ लगी ?"

सु दरी ने कहा—"घुटनो मे चोट आई है ।"

रामशकर ने उसका हाथ पकडकर चढाते हुए कहा—"ज़रा

५

रुकर चढा करो । अच्छा, चढो ।"

इसीलिये री रामशकर का हाथ पकडे हुए धीरे-धीरे ऊपर चढी ।

रामश

सुंदरी रामशंकर का हाथ पकड़े हुए थी। वह उसे दबा रही थी। रामशंकर ने देखते हुए भी, स्पर्श होते हुए भी, न अनुभव किया। वह उसे उसकी कमजोरी का कारण समझे।

ऊपर पहुँचते ही सासजी ने कहा—"क्यों, क्या बहुत चोट लगी है? हल्दी प्याज पीस ले आने को कहूँ?"

सुंदरी—"नहीं-नहीं, कुछ जरूरत नहीं है। जरा-सी चोट पहुँची है, और कुछ नहीं। यों ही ठीक हो जायगी।"

सुंदरी की सास ने रामशंकर से पूछा—"भेजने के पहले बहू को यहाँ नहीं ले आए?"

रामशंकर—"पहले से तो कोई जाने की बात तय न थी। एकाएक परसों मनोहर आ गए। ले जाने की जिद करने लगे, तब आखिर मजबूरन कल भेज देना पड़ा। जल्दी के मारे यहाँ आने का मौका ही न मिला।"

सुंदरी की सास—"बहू, रामा के लिये दो पान लगा लाओ।" सुंदरी पान लगाने चली गई।

सुंदरी की सास—"बेटा रामा, मैं तो अब काशीजी जाने के लिये तैयार हूँ।'

रामशंकर—"और भाभी कहाँ रहेंगी?'

सुंदरी की सास—"क्यों, मेरे साथ।'

रामशंकर—"मा, युवती स्त्रियों के लिये काशी की भी यात्रा हो, दुर्गम है। जितना पाप तीर्थस्थानों में होता है शायद ही कहीं होता है। फिर पाप के बीच में रहकर भले आदमी भी खराब हो

जाते है। मेरी राय मे तो काशी जाना आप मुल्तवी कर दे।"

सुदरी की सास—"यही सब सोचकर तो मै बडी चिता मे पड गई हूँ कि क्या करूँ। सुदर, जवान बहू को लेकर मै बडी आफत मे पडी हूँ। न यही मरती है, और न मुझे ही काल पूछता है।"

रामशकर—"इसमे अपना क्या चारा है। यह तो ईश्वर की इच्छा है, और क्या कहा जाय।"

सुदरी ने पान लाकर दो बीडे रामशंकर को दिए। रामशकर ने देखा, आज पान खुशबूदार चीजो से महक रहा था। आज रामशकर ने बहुत दिनो के बाद ऐसा खुशबूदार पान खाने को पाया था। बाबू चद्रमाप्रसाद के सामने ही ऐसे सुगधित बीडे खाने को मिला करते थे। उनके बाद से वह सब बद हो गए थे। अपने ऊपर आज इतनी कृपा होते देखकर वह हँसकर बोले—"आज यह कृपा कैसी?"

सुदरी ने हँसकर पूछा—"कैसी कृपा?"

रामशकर—"यही कि आज पान मारे खुशबू के महके जा रहे है। बहुत दिनो बाद ऐसे पान खाने को मिले है।"

सुदरी—"क्या करूँ, रक्खे-रक्खे मसाला खराब हुआ जा रहा था। कोई खाना तो है नहीं। आज इत्तिफाक से याद आ गई। कहा, लाओ तुम्हीं को खिला दूँ।"

रामशकर—"ओहो, धन्यवाद!"

सुदरी की सास—"रामा, आज भी यहीं खाकर जाना।

मै खाना बनाने को महाराजिन से कहे आती हूं ।"

रामशंकर—"नहीं मा, आज नहीं, रहने दो ।"

सुन्दरी की सास—"क्यो, क्या हुआ ?"

सुन्दरी—"जात चली जायगी ।"

सुन्दरी की सास—"चुप रह, जात चली जायगी ।"

रामशंकर के उत्तर की प्रतीक्षा बिना किए ही सासजी चली गई ।

सुन्दरी ने बैठते हुए कहा—"अच्छा यह बताइए कि विधवा का क्या कर्तव्य है ?"

रामशंकर—"विधवा का कर्तव्य है ब्रह्मचर्य-पालन करना । मृत स्वामी की चितना ही मे जीवन उत्सर्ग कर देना ।"

सुन्दरी—"अगर विधवा यह कठिन कर्तव्य न कर सके ?"

रामशंकर—'न कर सकने के क्या माने ? उसको यह करना ही पडेगा, इसीलिए हमारे यहाँ विधवा को ऐश्वर्य के सुख से दूर रहने को कहा है । उसके लिये इतने कठोर व्रतो की व्यवस्था की गई है, जिससे वह अपने मन को जीत सके । इंद्रियो का दासत्व न करे, बल्कि उन पर शासन कर सके ।

सुन्दरी—"पुरुषो के लिये क्यो नहीं यह व्यवस्था है । वे स्त्री के मर जाने पर क्यों दूसरा विवाह करते है ?"

रामशंकर—"उनके लिये इसलिये यह व्यवस्था नहीं की गई है कि पुरुष-जाति बडी उच्छृंखल होती है । अगर उनके लिये

दूसरे विवाह की व्यवस्था न हो, तो वे समाज के नियमो को तोड-फोडकर नष्ट-भ्रष्ट कर डाले। जब वे कामासक्त होते, तो नवाबी फैला देते। इसीलिये उनके लिये यह दूसरा विवाह है, और स्त्रियाँ सकुचीली, लज्जावती और शांत होती है। वे अपनी वासनाओ को दमन कर सकती हैं। इसीलिये इनके लिये यह व्यवस्था है।"

सुंदरी—"तो पुरुषो ने स्त्रियो की इस साधुता से अनुचित लाभ उठाया है। अगर वे भी पुरुषो की तरह उद्दड होतीं, तो शायद समाज को विधवा-विवाह करने की व्यवस्था करनी ही पडती, क्योंकि बेढब से सभी डरते है। 'टेढ जान शका सब काहू।'"

रामशकर—"हाँ, तब शायद करना पडता।"

सुंदरी—"इगलैंड आदि देशो की स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा अपने को हीन नहीं समझतीं, वे अपने अधिकार लेना जानती है, इसीलिये उनको समाज मे विधवा-विवाह रक्खा है।"

रामशकर—"हो सकता है। आजकल की हमारी हिंदू-स्त्रियाँ ऐसी हो रही है, इसीलिये विधवा-विवाह का प्रश्न समाज सम्मुख है। मेरी समझ मे शीघ्र ही विधवा-विवाह होने की था प्रचलित हो जायगी।"

सुंदरी—"विधवा-विवाह के बारे मे आपकी क्या राय है?"

रामशकर—"मेरी राय में तो उन विधवाओं का विवाह हो जाना ठीक ही है, जो अपनी वासना को दमन नहीं कर

सकतीं, और जो कर सकती हैं, वे कभी विवाह करके दुराचारिणी न हों। उनको उचित है कि एक स्वामी की, जिसके चरणों में कभी उन्होंने अपना सर्वस्व भेंट कर दिया था, जिसको ईश्वर के तुल्य माना था, उसी की चिंता में, आराधना में, अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यह तपस्या तो पहले कठिन है, लेकिन बाद में बड़ी सुखप्रद है। विधवा दंपति कभी सुखी नहीं हो सकते। दोनों के मन में कुछ-न-कुछ मैल रहता है। दोनों अपनी काम-वासना तृप्त करने के लिये ही विधवा-विवाह करते हैं। जहाँ स्वार्थ है, वहाँ प्रेम नहीं। देख लो, जो आदमी दूसरा विवाह करते हैं, वे कभी सुखी नहीं रहते। उनके यहाँ रोज झगड़ा-बखेड़ा लगा रहता है। दो नए हृदयों में प्रेम होना स्वाभाविक है, लेकिन दो पुराने में मुश्किल है।"

सुंदरी "तो योरपीय देशों में जो विधवाएँ विवाह करती हैं, वे सुखी नहीं रहतीं?"

रामशंकर—"उनसे मिलान क्यों करती हो। वहाँ तो पहले स्वामी जीवित रहते तलाक़ लेकर विवाह करती हैं। वहाँ तो विवाह ही काम-वासना है, प्रेम है, लेकिन कम। वहाँ पर भी विधवाओं की संख्या उन पुरुषों से अधिक है जिनकी स्त्री मर चुकी है, और विवाह नहीं किया है। [illegible] की मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट के अनुसार इँगलैंड और वेल्स के [illegible] आदमियों में ३८ विपत्नीक और ७१ विधवा थीं। [illegible]

फर्क था। स्त्रियाँ स्वयं ही दूसरा विवाह करना पसन्द नहीं करतीं। खैर, मैं अब जा रहा हूँ नीचे मा के पास। फिर कभी देखा जायगा।"

रामशंकर उठकर चले गए। सुंदरी देखती रही। उनके चले जाने के बाद एक ठंडी साँस लेकर बोली—"हाय, मैं क्या करूँ, अब मैं अपनी इच्छा को रोक नहीं सकती। लेकिन तुमको जीतना भी बड़ा मुश्किल जान पड़ता है। मैं जानती हूँ कि यह पाप है, लेकिन क्या करूँ। मैं अपने को नहीं रोक सकती, नहीं रोक सकती। मेरा पतन निश्चय है। अब तो हो ही रहा है, होने दो।"

[६]

सुंदरी ने ठंडी साँस लेकर कहा—"क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते?"

रामशंकर ने अपनी हँसी छिपाते हुए कहा—"क्या?"

सुंदरी ने फिर कहा "क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते?"

रामशंकर ने कहा—"मैं तुम्हें अपनी सहोदरा की भाँति प्यार ता हूँ। बहन, तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो। जिस न से भाई साहब ने तुम्हारा भार मेरे सिर सौंपा है, उस दिन मैं तुम्हें अपनी 'कला' के समान प्यार करता हूँ।"

कला रामशंकर की बहन थी।

सुंदरी ने पुन एक ठंडी साँस लेकर कहा—'[illegible] मुझे बहन

कह कर न पुकारो, मुझे यह नाम अच्छा नहीं लगता। 'वीनस'
हो, समझते नहीं।" ा, तुम्हारे

रामशंकर ने मृदु-कोमल स्वर में कहा—"क्यो न
कहूँ? तुम मेरी बहन के समान ही हो। तुम मेरे परलगी।
पत्नी हो, जिनको मैं सहोदर-तुल्य मानता था। फिर—"इच्छा
क्यो न कहू?" गर्दू। मेरी

सुंदरी ने किंचित क्रोध-सहित कहा—"यह न भी मन में
संबोधन हैं। कुछ और कहकर पुकारो, जिससे यह। आज वह
हो, इसकी ज्वाला शांत हो। इस पागल मन की चिरपोषित
हो। मन की साध पूरी हो।"

रामशंकर ने मृदु हास्य-सहित यहा—"अन एक ही धुन
कहूगा, आज से मैं तुम्हे मा कहूगा। मा कहने ही प्रकार का
से, स्नेह से, कृतज्ञता से उत्फुल्ल हो जाता है। मा
है, वह और किसी में नहीं है। अब तुम्हें आज भक्ति का।
पुकारूँगा मा।" रा यह वेप

सुंदरी ने घृणा से मुँह फेरकर कहा— । इसमें
मिठास कहाँ? मैं रोज सास जी को मा कह नहीं। क्या
लेकिन क्यों वह माधुर्य जिसकी चर्चा तुम
तुम मैं तो उसका अनुभव नहीं करती, तुम

रामशंकर ने गंभीर होकर कहा—"मा भी
न रहे। फिर मैं क्या कहूँ जिस मा मन ने लाल हो
ही गोद-पाट की स्त्रियों स्नेह से आर्द्र-चित्त हो

फर्क था।
खैर, मैं अब कहती है, "क्या है बेटा!' जिस 'मा' शब्द को सुनने
जायगा।" तमाम बहुएँ मन्नतें मानती है कि कोई उनके पुत्र हो,
नको मा कहकर पुकारे। जिस ,मा' शब्द के सुनने को
रामशंक ी स्त्रियाँ लालायित रहा करती है, वही 'मा' कहना
जाने के बाद गता है? तुम शिक्षिता हो, और तब भी तुम 'मा'
अब मैं अपने नहीं करतीं। धन्य हो!"
जीतना भी वने इतस्तत करते हुए कहा—"क्या मुझे कहना ही
पाप है, लेकिन। अब भी नहीं समझे। तुम शायद मनुष्य नहीं हो!
रोक सकती। रे पूछूँ, क्या उसका ठीक-ठीक उत्तर दोगे?"
होने दो।" —"पूछो, मैं जहाँ तक होगा, ठीक ही उत्तर दूँगा।"
। एक वंकिम कटाक्ष-सहित कहा—"कहो, मैं आज
ती हूँ? ठीक कहना।"
सुंदरी ने
नहीं करते?" ने हँसते हुए कहा—"बडी सुंदर देख पडती हो।
ए पडता है, मानो स्वयं जगज्जननी मेरे सामने खडी
रामशंकर ने अन्नपूर्णा भवानी प्रसन्न होकर दर्शन देने के लिए
सुंदरी ने र्णा होकर आई है।"
रामशंकर ने घृणा से मुँह बिचकाकर कहा—"बस, तुम्हारे
ना हूँ। बहन, र कुछ है ही नहीं। क्या ये सब तुम्हारे हृदय से
न मे भाई माल्हीं करते?"
। मैं तुम्हें अपने गंभीरता-सहित कहा—"आज तो तुम मुझे ठीक
कला रामशंकारनस' की भाँति देख पडती हो। इच्छा होती
सुन्दरी ने पुनवत बैठकर तुम्हें प्रणाम करूँ, और तुमसे वर

सुंदरी ने क्रोध-कंपित स्वर में कहा-"कहाँ की 'वीनस' और कहाँ की अन्नपूर्णा। तुम्हे क्या कुछ नहीं सूझता, तुम्हारे मन मे क्या कोई भाव नहीं जगता?"

सुंदरी लोलुप दृष्टि से रामशंकर की ओर देखने लगी।

रामशंकर ने धीर-शांत कंठ-स्वर मे उत्तर दिया—"इच्छा होती है कि तुम्हे प्रणाम करूँ। एक बार मा कहकर पुकारूँ। मेरी निज की मा तुम्हारी-जैसी सुंदरी न थी। कभी-कभी मन मे यह उठता है कि मेरी मा सुंदरी क्यों न थी। लाओ, आज वह साध पूरी कर लूँ। तुम्हे ही मा कहकर अपनी चिरपोषित अभिलाषा को पूर्ण कर लूँ।"

सुंदरी ने अधीर होकर कहा—"उहे! तुम्हे तो एक ही धुन सवार है मेरे सुंदर रूप को देखकर क्या और किसी प्रकार का भाव हृदय में नहीं आता।"

रामशंकर ने शांत भाव से कहा—"आता है भक्ति का। जी चाहता है, तुम्हे भक्ति-पूर्वक प्रणाम करूँ। तुम्हारा यह वेष देखकर भक्ति से शरीर रोमांचित हुआ जा रहा है।"

सुंदरी की अधीरता चरम सीमा को पहुँच गई। उसने रुँधे कंठ से कहा—"भक्ति का संचार होता है प्रेम का नहीं। क्या तुम्हारे जी मे यह नहीं आता कि मुझे प्यार करो।"

रामशंकर ने चकित होकर कहा—"किसको?"

सुंदरी के कपोल लज्जा से अभिमान से क्षोभ से लाल हो गए थे। उसने उत्तर दिया—"तुमको।"

रामशकर ने साश्चर्य कहा—"तुमको। तुमको तो मैं अपनी बहन और मा से अधिक प्यार करता हू।"

सु दरी—"नहीं, इस रूप से नहीं, और किसी रूप से।"

रामशकर ने पूछा—"वह किस रूप से ?"

सु दरी ने कहा—"क्या मुझे कहना ही पडेगा। क्या मेरे मुँह से कहलवाकर ही मानोगे ? क्या तुम्हे इतना भय है ? इतनी लज्जा है ? प्रियतम, प्राणनाथ, बोलो, क्या प्यार करोगे ? है-है, चौंकते क्यों हो ? चौंको नहीं, मै तुम्हे प्यार करती हू। जीवन से भी अधिक प्यार करती हूँ। मेरा प्यार समुद्र से भी अधिक गंभीर, दामिनी से भी उद्दाम, तूफान से भी उन्मत्त है। मै तुमको अपना आराध्य देव मानती हूँ। तुम मेरे प्राणनाथ हो, सबसे अधिक प्यारे हो। मै तुम्हारे लिये पागल हुई जा रही हूँ। तुम मुझे प्यार करो। सब कुछ तुम्हारे चरणों पर न्योछावर है। मान-सम्भ्रम, ऐश्वर्य, स्वर्ग-नरक, भाई-बन्धु, मा-बाप सभी तुम्हारे ऊपर न्योछावर है। खाली एक दफे तुम कहो—प्राणेश्वरी!"

यह कहकर सु दरी ने उन्मादिनी की भाँति रामशंकर को अपने बाहु-पाश मे बद्ध करके अपनी हृदय की ज्वाला को शांत कर लेना चाहा।

रामशकर अपना धैर्य खो चुके थे। उन्होने उसे जोर से दूर झिटकते हुए कहा—'भाभी, बस, तुम्हारा यहाँ तक अपमान

न है। नहीं जानती, वह किसमे
हो चुका। छि.! मेरी प्रतिज्ञा भूठी · ा चाहती है, किंतु कर नहीं
आँखें खोलकर देखो, कौन है।" ैसे? समय पाकर कभी

सुंदरी ने फिर कर देखा। देखा कि खिड़· गी राजकुमार को।
झाँक रहे हैं। उसने अपनी आँखों का भ्रम स· ी महेश बाबू
मलकर फिर देखा। वही मूर्ति अब भी वहाँ पर खड़ी · गिराकर
उसकी दोनों आँखें अंगारों की तरह जल रही थीं। मुख लगी
पैशाचिक हँसी थी। सुंदरी उसे देखकर चिल्लाई, और वहीं पर बेहोश होकर गिर पड़ी।

रामशंकर ने फिर सिर उठाकर देखा। अब भी वह संतोष की हँसी हँस रहे थे। उन्होंने फिर देखा। अब भी कुछ न था।

रामशंकर सुंदरी को होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। थोड़ी देर बाद वह होश में आकर बोली—"भैया, आज तुमने एक बड़े भीषण पाप से बचा लिया। मुझ अभागिनी को क्षमा करो। मेरे ऊपर दया करो। मैं अभी तक अंधकार में थी। सच है, 'स्वामी की स्मृति' ही विधवा का 'शेष-संबल है।'"

रामशंकर मुस्कराने लगे।

रामशंकर ने साश्चर्य कहा—

बहन और मा में अधिक ?

सुंदरी—"नहीं

रामशंकर ने

लालसा

[१]

आशा की मधुर थपकें जीवन को सुखमय कर देती है। निराशा शाप है, और आशा आशीर्वाद। जब तक आशा है, तब तक प्राण है, और जहाँ निराशा की भयंकर कालिमामयी छाया आकर पड़ी, वहीं नाश, मृत्यु और प्रलय है।

यही हाल हमारे महेश बाबू का था। महेश बाबू सुहासिनी से प्रेम करते थे। करते थे क्या माने, करते हैं, किंतु उन्हें कई बार निराश-सा होना पड़ा। वह कभी समझते कि सुहासिनी भी उन्हें चाहती है, कभी, यह सोचते कि नहीं, उनकी यह धारणा भूल है। सुहासिनी उन्हें नहीं चाहती, सुहासिनी राजकुमार को चाहती है। कभी वह ठीक-से निश्चय न कर पाते कि कौन बात ठीक है। राजकुमार और महेशचंद्र दोनों प्रतिद्वंद्वी हैं।

सुहासिनी नवोढ़ा है। सुंदरी है। मतवाला यौवन उस पर अपना शासन कर रहा है। वह भी मदोन्मत्त है। वह नहीं जानती कि किस से प्रेम करे। जब वह हँसकर एक बंकिम कटाक्ष-सहित राजकुमार से बातें करती है, तो महेश बाबू की भृकुटियाँ चढ़ जाती हैं, और जब वह मधुर मुस्कान-सहित महेश बाबू से बातें करती है, तो राजकुमार का मुँह लटक

जाता है। बेचारी बड़ी विपद्-ग्रस्त है। नहीं जानती, वह किससे प्रेम करे। वह दोनों को प्रसन्न करना चाहती है, किंतु कर नहीं सकती। कहाँ से कर सकती है? और कैसे? समय पाकर कभी वह महेश को प्रसन्न कर देती है, और कभी राजकुमार को। दोनों भूले हुए हैं रमणी के प्रेम-जाल में। जब कभी महेश बाबू रूठ जाते हैं, तो सुहासिनी उनके पैर छूकर और आँसू गिराकर मना लेती है। बेचारे महेश बाबू भी बड़े भोले हैं। वह भी रमणी के माया-जाल में फँसकर उसका अपराध क्षमा कर देते हैं। जब कभी राजकुमार बाबू रूठते हैं, तब भी वही जाल फैलाया जाता है, और राजकुमार भी भूल जाते हैं। सुहासिनी दो प्रेमियों की मूर्खता पर खूब हँसती और दो भोले-भाले मृगों का शिकार करती है।

एक दिन की घटना का वर्णन करते हैं—

सुहासिनी के घर पर महेश बाबू बैठे हुए थे। सुहासिनी और महेश में प्रणय-वार्ता हो रही थी। दोनों सटे बैठे थे। राजकुमार के आने की आशा न थी। सुहासिनी भी निर्भय हो महेश बाबू से बातें कर रही थी।

महेश बाबू ने सुहासिनी का हाथ पकड़ते हुए कहा—"सुहास, देखो, तुम्हें एक बात माननी पड़ेगी। अगर न मानोगी, तो अच्छा न होगा।"

सुहासिनी ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींचकर कहा—"तुम्हारी बात न मानूँगी, तो फिर किसकी मानूँगी? तुम तो मेरे प्राणनाथ हो।"

महेश बाबू ने कहा—"देखो, आज से तुम कभी राजकुमार के पास न बैठो। राजकुमार से तुम्हारा क्या काम है? राजकुमार जो चीज माँगे, उन्हें दे दो, किंतु उनके पास बैठने की, हँसने की, बातें करने की कौन आवश्यकता है? उनसे मत बोलो। तुम मुझे स्वामी-रूप से मानती हो, तुम्हें मेरा कहना मानना पड़ेगा।"

महेश बाबू की बात सुनकर सुहासिनी मुस्कराती हुई बोली—"वाह, मैं क्या उनके पास बैठती हूँ। वह हमारे कौन हैं। पर आकर यह चीज लाओ, वह लाओ, पान लाओ, पानी लाओ, लाओ-लाओ कर मेरे नाक में दम कर देते हैं। न मालूम क्यों आते हैं। वह मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाते। क्या करूँ, घर में आते हैं, उनका कहना न करूँ, तो माँ बुरा-भला कहती हैं और वह भी रूठ जाते हैं। मुझे उनके रूठने की परवा नहीं है, किंतु माँ का कहना करना ही पड़ता है।"

महेश बाबू ने उत्तर दिया—"मैं उनका काम करने के लिए नहीं मना करता, किंतु मुझे यह नहीं अच्छा लगता कि तुम अकेले में उनके पास बैठो, और उनसे बातें करो। तुम मेरी स्त्री हो। मेरी आज्ञा ही तुम्हारे लिये सब कुछ है।"

वाह! महेश बाबू, और गठबन्धन हुए ही सुहासिनी स्वामिनी हो गई। बीसवीं शताब्दी का शायद यह नया विचार है। अब तक शास्त्रकारों ने आठ ही प्रकार के विवाह [illegible] थे, किंतु आपने एक नए विवाह की सृष्टि की। इस नई [illegible] पर, [illegible] के कुल-मर्यादा क्या न आवेगी [illegible]?

सुहासिनी ने गंभीरता-सहित कहा—"तुम्हारी आज्ञा ही मेरे लिये सब कुछ है। मै स्वयं अपने आप कभी नहीं जाती। न जाती, और न जाने की इच्छा ही करती हूँ, किंतु माँ जो नाराज होती है।"

महेश बाबू ने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से पूछा—"मा की आज्ञा श्रेष्ठ है कि मेरी ? मा की भी आज्ञा मानो और मेरी भी। जब राजकुमार आवे, तब उनके सामने से काम के बहाने उठ जाओ, और जरा बुद्धि से भी कुछ काम लिया करो।"

सुहासिनी ने अश्रुप्लावित नयनों से कहा—"जाओ, तुम्हारा हम पर विश्वास नहीं है।"

महेश बाबू ने हँसते हुए कहा—"वाह ! तुम पर विश्वास न होगा, तो होगा फिर किस पर ? है-है, तुम रोती क्यों हो ? मैंने आज तक क्या कभी तुम्हारा अविश्वास किया है ? जिस दिन तुम्हारा अविश्वास करूँगा, सुहासिनी उस दिन मेरे लिये संसार शून्य होगा, पृथ्वी पर मेरा शरीर ही होगा, प्राण नहीं। मुझे सूर्य के ताप में विश्वास नहीं है, चन्द्र की शीतलता में विश्वास नहीं है, किंतु तुम में विश्वास है। तुम मेरी प्राणेश्वरी हो। मेरी सब कुछ हो। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मनुष्य जिसे प्यार करता है, क्या कभी उसका अविश्वास कर सकता है ? तुम्हें सावधान करता हूँ। सावधान करना अविश्वास नहीं है।"

महेश बाबू का कंठ प्रेमावेग से रुकने लगा। प्रेम उच्छ्वास से फूटकर वह निकला। सुहासिनी भी मौन हो सुनती रही। उस

महेश बाबू की बातों से एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करती रही।

सुहासिनी की आँखों में आँसू आए कि नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन अंचल से आँखें पोंछती हुई अवरुद्ध कंठ से बोली "तुम अविश्वास न करते होते, तो कभी मुझ से ये बातें न करते। मैं तुम्हें देखने के लिये कितनी आकुल रहती हूँ, तुम नहीं जानते। मेरे कान तुम्हारे ही शब्द सुनने के लिये आकुल रहते हैं, तुम्हारे सुन्दर मुख देखने को नेत्र सदा रोया करते हैं, तुम क्या जानो? तुम पुरुष हो, रमणी का हृदय कैसे जान सकते हो? रमणी के हृदय में अगाध प्रेम का स्रोत बहा करता है। वह जिसे प्यार करती है, उसी ओर स्रोत भी अविराम गति से बहने लगता है। तुम क्या जानो, मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ?"

यह कहकर सुहासिनी ने फिर अपनी आँखों को अंचल से पोंछा।

महेश बाबू पानी-पानी हो गए।

धन्य हो रमणी के आँसू! तुम जो न करो, वह थोड़ा है!

महेश बाबू ने विनीत स्वर में कहा—"सुहासिनी, मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हें सन्देह नहीं करता, तुम पर मेरा विश्वास है। तुम कभी दूसरे की नहीं हो सकती। सुहासिनी, मुझे क्षमा करो।"

महेश बाबू ने सुहासिनी के पैरों पर अपना सिर रख दिया।

सुहासिनी ने कहा—"हाँ-हाँ, यह क्या करते हो? तुम हमारे पूज्य हो। तुम्हें यह नहीं शोभता।"

महेश बाबू ने कहा—"अपराध किया है, उसकी क्षमा चाहता हूँ। इसमें दोष क्या है?"

सुहासिनी ने कहा—"नहीं, मैंने अपराध किया है, मुझे क्षमा करो।"

यह कह सुहासिनी ने महेश बाबू के पैरों में अपनी दो उँगलियाँ छुआकर अपने सिर पर लगा लीं।

महेश बाबू ने प्रेम की रोष-भरी दृष्टि देखकर कहा—"यह क्या सुहासिनी!"

सुहासिनी ने मुख नत करके कहा—"क्षमा-याचना।"

महेश बाबू ने पूछा—"तुम्हारा अपराध क्या था?"

सुहासिनी ने उत्तर दिया—"तुम्हें दुःखित करना।"

महेश बाबू ने कहा—"सुहासिनी! यह तुम्हारा अन्याय है। अपराध मेरा था, जो मैंने तुम्हारा अविश्वास किया, न कि तुम्हारा।"

सुहासिनी ने उत्तर दिया—"दोनों का था। दोनों ने एक दूसरे को क्षमा कर दिया, और दोनों ने क्षमा माँग ली।"

महेश बाबू मन-ही-मन फूल गए कि सुहासिनी उन्हीं से प्रेम करती है। उन्हीं की है।

हाय रे! अंधपुरुष-जाति।

[२]

प्रेमनाथ—"स्त्री-जाति पर विश्वास करना मूर्खता है। मनुष्य चाहे अग्नि पर विश्वास कर ले कि वह जलावेगा नहीं

पर विश्वास कर ले कि काटेगा नहीं, किन्तु स्त्री-जाति पर विश्वास करना मूर्खता है।'

महेश बाबू ने मेज पर हाथ पटकते हुए, अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"यह तुम्हारा अन्याय है, प्रेम! स्त्री-जाति को दूषित मत करो। स्त्री-जाति सर्वदा से पूज्य है। यदि तुम एक स्त्री को प्यार करो, तो जरूर उससे प्रेम पाओगे। तुम निष्कलंक हो, तो तुम्हारी स्त्री कभी दूषित नहीं हो सकती। तुम स्वयं चरित्रहीन हो, और स्त्री को सती-साध्वी बनाना चाहते हो, यह तुम्हारी भूल है। तुम स्वयं पहले सच्चरित्र बनो, फिर देखो, कैसे तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी आज्ञाकारिणी नहीं होतीं। तुम उन पर विश्वास करो, फिर देखो, कैसे वे तुम पर विश्वास नहीं करतीं। तुम तो उनके साथ विश्वासघात करते हो, और प्रत्युपकार में चाहते हो उनका विश्वास। यह सब तुम्हारी भयंकर भूल है, मूर्खता है।'

ने गढा ही नहीं ? क्या वे वृक्षो की भाँति पैदा होती है। वे भी अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न होती हैं। पुरुष और स्त्रियों का उद्गम एक ही है। रही शास्त्र की बात, वे पुरुष-रचित है, स्त्री-रचित नहीं। यदि आज के दिन स्त्री-रचित शास्त्र होते तो क्या पुरुष-जाति इतनी उच्छृंखल, उद्दंड और पिशाच हो सकती थी वह भी नियमों मे बाँध दी जाती। तुम्हे मालूम है कि लता वृक्ष के सहारे चढती है। अगर वृक्ष सीधा होता है, तो लता भी सीधी ही चढती है, अगर वृक्ष तने से सीधा हो, और ऊपर से नीचे की ओर झुका जा रहा हो, तो लता भी उतनी दूर सीधी ही चढेगी, और फिर वह वृक्ष के साथ ही भूमि की ओर मुड पडेगी। यह है प्राकृतिक नियम। यदि पुरुष सच्चरित्र हैं तो स्त्रियाँ भी अवश्य साध्वी होगी, और अगर पुरुष खराब हैं, तो स्त्रियाँ भी खराब होंगी। पैसे देकर गिन्नी की आशा करना मूर्खता नहीं तो क्या बुद्धिमानी है ?"

प्रेमनाथ—"लेकिन स्त्री-जाति पर विश्वास न करना चाहिए। देखो, नीतिकार ने भी कहा है—स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।' '

प्रेमनाथ महेश के अंतरंग मित्र हैं। सुहासिनी और महेश का प्रेम इन्हें विदित है। महेश कभी प्रेमनाथ से कोई बात नहीं छिपाते, और प्रेमनाथ कभी महेश से नहीं छिपाते।

महेश—"हाँ, मुझे सुहासिनी पर विश्वास है।"

प्रेमनाथ—"अगर तुम्हारी सुहासिनी राजकुमार के पास बैठी हो, तो तुम कुछ भी अपने मन में ख्याल तो नहीं करोगे? तुम्हारा [illegible] न रह जायगा? एक प्रकार का भय, [illegible] तुम्हारे [illegible] में [illegible] की भाँति न बहने लगेगा?"

महेश ने [illegible] हुए उत्तर दिया—"हाँ [illegible] क्या कहा?"

प्रेमनाथ (जोर देकर)—"कहा क्या, यही कहा कि अगर सुहासिनी [illegible] राजकुमार के पास [illegible], तो तुम्हारा मन [illegible], [illegible] न रहेगा?"

महेश ने कोई उत्तर न दिया।

प्रेमनाथ ने कहा—"बोलो, उत्तर दो, चुप क्यों हो?"

महेश—"[illegible] मेरे मन को कष्ट मिलेगा।"

प्रेमनाथ ने [illegible] कहा—"कष्ट क्या मिलेगा, तुम्हारा [illegible] पर विश्वास है। और [illegible] अविश्वास क्या [illegible]?"

कि तुम्हारी स्त्री के ऊपर। तुम जानते हो कि वह उसका भाई है, उससे उसकी कुछ भी हानि नहीं होने की, इसलिये तुम्हारे मन को कष्ट नहीं मिलता।"

महेश निरुत्तर रहे।

प्रेमनाथ—"बोलो, निरुत्तर क्यों हो?"

महेश—"तुमने मुझे बड़ी विकट समस्या में डाल दिया।

प्रेमनाथ—"समस्या कैसी, सीधी बात है। पुरुष स्त्री के भाई का विश्वास करता है, न कि स्त्री का।"

महेश—"शायद ऐसा ही हो।"

प्रेमनाथ—"अच्छा महेश तुम्हारा मुझ पर विश्वास है?"

महेश—"अगर तुम पर मेरा आंतरिक श्रद्धा-विश्वास न होता, तो मैं कभी जीवन की ये गुप्त घटनाएँ तुम पर प्रकट न करता।"

प्रेमनाथ—"अगर तुम मुझे अपनी सुहासिनी के पास बैठे देख लो, और देख लो मुझे उसका हाथ पकड़े हुए, तो क्या तुम्हारी यह श्रद्धा मेरे प्रति रहेगी? क्या तब भी तुम मुझे चाहोगे?"

महेश—"हाँ अन्तःहृदय से प्रेमनाथ! तुम्हारे ऊपर मेरी श्रद्धा कभी कम नहीं हो सकती।"

प्रेमनाथ—"ये कोरी बातें-ही-बातें न समझो, एक दिन तुम अवश्य सुहासिनी को मेरे आलिंगन-पाश में जकड़ देखोगे, और उसी दिन तुम्हें दिखा दूँगा कि स्त्रियों पर विश्वास करना मूर्खता है।"

उसी समय महेश के कमरे में मित्र उमाकांत बाबू ने प्रवेश किया। दोनों मित्रों ने स्वागत किया।

उमाकांत, महेश और प्रेमनाथ, ये तीनों बड़े मित्र हैं। इनकी मित्रता उनके अध्ययन काल से ही थी।

[३]

ईश्वर ने किस वस्तु से रमणी का हृदय रचा है, यह नहीं मालूम। रमणी एक मोहिनी शक्ति है—रमणी एक माया-मरीचिका है—रमणी एक रूप-जाल है, जिसमें अभागे मनुष्य आ-आकर फँस जाते हैं। रमणी का हृदय बड़ा चंचल है। [illegible] है [illegible] जानते हैं, कि नहीं, [illegible] बड़ा अस्थिर होता है रमणी का हृदय। शेक्सपियर ने कहा है "Frailty, thy name is woman!" अर्थात् '[illegible]' [illegible] कि स्त्री-जाति ही चंचल है, चंचलता ही [illegible] है। [illegible]

[illegible]

नहीं है। सुहासिनी किसी से भी प्रेम नहीं करती, राजकुमार से भी नहीं। स्त्री सर्वदा एक नवीन चीज की खोज में रहती है। जब तक वह उसे नहीं मिलती, तब तक वह उसे अपनालेने की कोशिश करती है, जहाँ उसे वह मिल गई, बस वहीं उसकी सारी आशा पूर्ण हो गई, फिर उसे ठुकराकर, दूर कर देना चाहती है। राजकुमार जब तक सुहासिनी से प्रेम नहीं करते रहे तब तक सुहासिनी सदा उनके पाने का यत्न करती रही, और जहाँ राजकुमार उसके प्रेम-जाल में फँस गए—सुहासिनी के हृदय की आशा पूर्ण हो गई—वहाँ फिर सुहासिनी ने छोड दिया। राजकुमार के बाद महेश बाबू को पकडा, महेश बाबू भी उसके प्रेम-जाल में फँस गए, फिर उनकी भी कुछ परवाह न रही।

सुहासिनी एक नवशिक्षित घर की बालिका है। सुहासिनी के पिता कृष्णचन्द्र बैरिस्टर है। सुहासिनी की माता डिप्टी कलेक्टर की लडकी है। आप दो बार इंगलैंड हो आई है। एक बार तो अपने पिता के साथ, और फिर अपने स्वामी के साथ। आप बडी फैशनबुल है। आपके कपडे विलायती [illegible] रहते है। मिस्टर कृष्णचन्द्र की बैरिस्टरी खूब चलती है। हजारों रुपयो की आय है। फिर उनकी बीबी फैशनेबुल क्यों न हो

राजकुमार ने अपनी हैट टेबुल पर रखते हुए कहा—"उफ़! आज बड़ी सर्दी है।"

सुहासिनी ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"कार्तिक-मास समाप्त होने आया, सर्दी के दिन है ही। आपने हैट क्यों उतार दी?"

राजकुमार ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"It is out of etiquette, नारी का मान करना पुरुषों का धर्म है।"

सुहासिनी ने हँसते हुए कहा—"हाँ-हाँ, ठीक है।

राजकुमार ने हँसी छिपाते हुए कहा—महेश बाबू आते तो हैं?"

सुहासिनी की मुख-श्री क्षण-भर के लिए [illegible] हो गई। अपने को सँभालकर कहा—"आते होंगे, मुझे क्या पड़ी है। कभी आते है, जलाने ही आते है। उनको देखकर मेरा रक्त उबल उठता है। उनको देखकर घृणा उत्पन्न हो जाती है।"

राजकुमार ने हँसते हुए कहा—"होगा, मैं भी उन्हें देख नहीं सकता। मुझे कभी-कभी भय होता है कि कहीं तुम्हें हाथ से खो न बैठूँ, इसीलिये उनको देखकर मेरी तबियत घबरा जाती है।

सुहासिनी ने साभिमान कहा—'यही तुम्हारा विश्वास है।

राजकुमार—"विश्वास तो तुम पर बहुत है, किन्तु भय [illegible] ही है।'

सुहासिनी ने और भी [illegible] करके कहा—'[illegible] विश्वास होता, तो कभी तुम ऐसी बात न करते। [illegible]

राजकुमार इँगलैंड से आई० सी० एस्० पास हैं। नगर के डिप्टी-कलेक्टर है।

प्रेमनाथ के पिता श्यामाचरण एक व्यवसायी पुरुष हैं। वड़ा भारी कारोवार है। आप भी एम० ए० पास हैं। नगर के एक कालेज में प्रोफेसर हैं।

तीनो अविवाहित है। तीनो भिन्न-भिन्न जाति के है। किंतु ये लोग तो जाति-भेद मानते ही नहीं। तीनो वरावर सुहासिनी के यहाँ आते-जाते हैं। मिस्टर कृष्णचंद्र की इच्छा है कि सुहासिनी इन्हीं तीनो मे से किसी को वरे। अभी तक वावू प्रेमनाथ तो सुहासिनी के प्रेम-जाल से अलग रहे। वह विलकुल किनारा खींचे रहे, इसलिये कि महेश वावू सुहासिनी से प्रेम करते हैं। प्रेमनाथ की महेश से वडी मित्रता है। वे दोनो मित्रता का मूल्य स्त्री-प्रेम से उच्च समझते हैं। एक सामान्य स्त्री के लिये आपस मे वैमनस्य हो, यह प्रेमनाथ की इच्छा नहीं। है।

सध्या काल है। घर-घर मे प्रदीप जल उठे। हिंदू-रमणियाँ तुलसी के नीचे सांध्य प्रदीप जलाकर रख गई है। वे उत्कंठित हृदय से स्वामी के घर आने की राह देख रही हैं। किंतु सुहासिनी अपने स्वामी नहीं, खिलौना राजकुमार के आने की राह देख रही है।

राजकुमार ने हँसते हुए प्रवेश किया। सुहासिनी भी मुस्किरा दी।

राजकुमार ने अपनी हैट टेबुल पर रखते हुए कहा—"उफ़ ! आज बड़ी सर्दी है।"

सुहासिनी ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"कार्तिक-मास समाप्त होने आया, सर्दी के दिन हैं ही। आपने हैट क्यों उतार दी ?"

राजकुमार ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"It is out of etiquette, नारी का मान करना पुरुषों का धर्म है।"

सुहासिनी ने हँसते हुए कहा—"हाँ-हाँ, ठीक है।"

राजकुमार ने हँसी छिपाते हुए कहा—"मोहन बाबू आते तो हैं ?"

सुहासिनी की मुख-श्री क्षण-भर के लिए परिवर्तित हो गई। अपने को सँभालकर कहा—"आते होंगे, मुझे क्या पड़ी है। जभी आते हैं, जलाने ही आते हैं। उनको देखकर मेरा रक्त [illegible] उठता है। उनको देखकर घृणा उत्पन्न हो जाती है।"

राजकुमार ने हँसते हुए कहा—"होगा, मैं भी उन्हें देख नहीं सकता। मुझे कभी-कभी भय होता है कि कहीं तुम्हें हाथ से खो न बैठूँ, इसीलिये उनको देखकर मेरी तबियत घबरा जाती है।"

सुहासिनी ने साभिमान कहा—"यही तुम्हारा विश्वास है ?"

राजकुमार—"विश्वास तो तुम पर बहुत है, किन्तु मन [illegible] ही है।"

सुहासिनी ने और भी [illegible] कहा—"[illegible] विश्वास होता, तो कभी तुम ऐसा [illegible] न करते। [illegible]

राजकुमार इंगलैंड से आई० सी० एस्० पास हैं। नगर के डिप्टी-कलेक्टर हैं।

प्रेमनाथ के पिता श्यामाचरण एक व्यवसायी पुरुष हैं। वडा भारी कारोवार है। आप भी एम० ए० पास हैं। नगर के एक कालेज में प्रोफेसर हैं।

तीनो अविवाहित हैं। तीनो भिन्न-भिन्न जाति के है। किंतु ये लोग तो जाति-भेद मानते ही नहीं। तीनो बराबर सुहासिनी के यहाँ आते-जाते हैं। मिस्टर कृष्णचद्र की इच्छा है कि सुहासिनी इन्हीं तीनो मे से किसी को वरे। अभी तक बाबू प्रेमनाथ तो सुहासिनी के प्रेम-जाल से अलग रहे। वह विलकुल किनारा खींचे रहे, इसलिये कि महेश बाबू सुहासिनी से प्रेम करते हैं। प्रेमनाथ की महेश से वडी मित्रता है। वे दोनो मित्रता का मूल्य स्त्री-प्रेम से उच्च समझते हैं। एक सामान्य स्त्री के लिये आपस मे वैमनस्य हो, यह प्रेमनाथ की इच्छा नहीं। है।

सध्या काल है। घर-घर मे प्रदीप जल उठे। हिंदू-रमणियाँ तुलसी के नीचे सांध्य प्रदीप जलाकर रख गई है। वे उत्कंठित हृदय से स्वामी के घर आने की राह देख रही हैं। किंतु सुहासिनी अपने स्वामी नहीं, खिलौना राजकुमार के आने की राह देख रही है।

राजकुमार ने हँसते हुए प्रवेश किया। सुहासिनी भी मुस्किरा दी।

राजकुमार ने अपनी हैट टेबुल पर रखते हुए कहा—"उफ ! आज बडी सर्दी है ।"

सुहासिनी ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"कार्तिक-मास समाप्त होने आया, सर्दी के दिन हैं ही । आपने हैट क्यों उतार दी ?"

राजकुमार ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"It is out of etiquette,नारी का मान करना पुरुषों का धर्म है ।"

सुहासिनी ने हँसते हुए कहा—"हाँ-हाँ, ठीक है ।"

राजकुमार ने हँसी छिपाते हुए कहा—महेश बाबू आते तो हैं ?"

सुहासिनी की मुख-श्री क्षण-भर के लिए अतर्हित हो गई । अपने को सँभालकर कहा—"आते होंगे, मुझे क्या पडी है । जभी आते है, जलाने ही आते हैं । उनको देखकर मेरा रक्त उबल उठता है । उनको देखकर घृणा उत्पन्न हो जाती है ।"

राजकुमार ने हँसते हुए कहा—"होगा, मै भी उन्हे देख नहीं सकता । मुझे कभी-कभी भय होता है कि कहीं तुम्हे हाथ से खो न बैठूँ, इसीलिये उनको देखकर मेरी तबियत घबरा जाती है ।"

सुहासिनी ने साभिमान कहा—'यही तुम्हारा विश्वास है ।"

राजकुमार—"विश्वास तो तुम पर बहुत है, किंतु भय होता ही है ।'

सुहासिनी ने और भी कंठ मृदु करके कहा—"अगर तुम्हारा विश्वास होता, तो कभी तुम ऐसी बात न कहते ।' यह कहकर

सुहासिनी ने अपना मस्तक राजकुमार वाबू के कंधे पर रख दिया, और अधखुली आँखों से, माया-भरी चितवन मे देखने लगी। बेचारे राजकुमार अब और न सहन कर सके, धीरे-धीरे सप्रेम, सादर, सस्नेह उसके मुख को उठाकर उन्होंने उसके गोल-गोल गुलावी गालों को चूम लिमा। सुहासिनी ने लज्जित होकर कहा—"जाओ, अभी कोई देख लेता, तो क्या होता ?"

राजकुमार ने हँसते हुए उत्तर दिया—"अरे, होता क्या ? लोग कहते, विवाह के पहले ही वर ने वधू का मुँह चूम लिया। यह कोई आज नया तो किया नहीं। पहले भी तो कई वार ।"

सुहासिनी ने अपने नन्हे-नन्हे हाथों से राजकुमार का मुख वंद कर दिया। राजकुमार ने इस वार उसकी गदेली चूम ली। सुहासिनी ने फिर अपना हाथ भी खींच लिया। राजकुमार ने खडे होकर जवरदस्ती सुहासिनी को उठाकर अपने आलिंगन-पास मे वद्ध कर लिया। सुहासिनी ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। राजकुमार वार-वार उसके सुंदर मुख को चूमने लगे।

इसी समय किसी के पैर के शब्द ने दोनो को चौंका दिया। सुहासिनी के माता-पिता दोनों क्लव गए हुए थे। महेश वाबू के आने का समय था ही नहीं। सुहासिनी भी निर्भय चित्त से राजकुमार से प्रणय-लीला कर रही थी। दोनो ने चौंककर भीत तथा कंपित हृदय से देखा, द्वार पर मुस्कराते हुए वावू प्रेमनाथ खडे थे।

प्रेमनाथ ने फिरते हुए कहा—"बड़े असमय में आया। मैं समझता था कि यहाँ पर बाबू कृष्णचंद्र से भेंट होगी, इसीलिये बिना आज्ञा लिए चला आया, और उनसे कुछ विशेष काम था। क्षमा कीजिएगा। मैं जाता हूँ, फिर कभी आऊँगा।"

सुहासिनी ने एक क्रोध-भरी दृष्टि राजकुमार की ओर निक्षेप करके मानो कहा—"तुम्हीं ने आज बुरी तरह से लज्जित किया। फिर मुख नत करके सलज्ज कंठ से कहा—"बाबू और माँ दोनों क्लब गए हैं। जाते कहाँ हैं, बैठिये।"

राजकुमार ने अपनी हैट उठाकर कहा—"अच्छा सुहासिनी मैं जाता हूँ।" और बगैर कुछ कहे हुए, उत्तर की उपेक्षा करके वायु के वेग से बँगले के बाहर चले गए।"

प्रेमनाथ धीरे-धीरे आकर उसी कुर्सी पर बैठ गए, जहाँ पर अभी तक मिस्टर राजकुमार आधिपत्य जमाए हुए थे दोनों कुछ देर तक मौन रहे।

सुहासिनी ने अपने को सँभालकर कहा -"मिस्टर राजकुमार बड़े जंगली हैं। आज इन्होंने जैसा मेरा अपमान किया, वैसा किसी ने भी नहीं किया। आप आ गए, नहीं तो न-जाने क्या होता।'

प्रेमनाथ ने मन-ही-मन हँसते हुए उत्तर दिया—मिस्टर राजकुमार का यह व्यवहार पाशविक था।'

सुहासिनी ने दीर्घ निःश्वास खींचते हुए कहा— मैं नहीं जानती, किस प्रकार आपको धन्यवाद दूँ।

प्रेमनाथ ने मन-ही-मन कहा, धन्यवाद दोगी या अभिशाप। फिर कहा—"धन्यवाद की कौन जरूरत ?"

सुहासिनी ने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा—"आपने जो मेरी बडी विपद् से रक्षा की। नारी के लिये इससे बढकर सकटकाल शायद और नहीं।"

प्रेमनाथ—"शायद नहीं।"

सहासिनी—"यह बात मै बाबूजी से कहूँगी।"

प्रेमनाथ (मन-ही-मन)—"डर है कि कहीं मैं न कह दूँ।" (ऊपर से) "जाने दो। इस बार क्षमा करो। अभी हम और तुम दोनो ही जानते हैं। फिर सब कोई जान जायँगे। अपना मुँह कैसे दिखा सकोग।"

सुहासिनी ने कुछ सोचते हुए कहा—"ठीक है।"

प्रेमनाथ मन-ही-मन खूब हँसे। सुहासिनी के मन का खटका निकल गया।

प्रेमनाथ ने उठते हुए कहा—"अब चलूँगा।"

सुहासिनी—"यह क्या अभी से ? थोडी देर और बैठिए।

प्रेमनाथ—"नहीं, जाना ही पडेगा।"

सुहासिनी—"फिर कल आइएगा ! सवेरे।"

प्रेमनाथ—"शायद न आ सकूँ।"

सुहासिनी—"For my sake at least कम-से-कम मेरे ऊपर अनुग्रह करके अवश्य आइएगा।"

प्रेमनाथ—"अच्छा, आऊँगा।"

प्रेमनाथ चले गए। सुहासिनी सोचने लगी। आज न-जाने कैसे यह कहाँ से आ गया। सब गुड गोबर कर दिया। राजकुमार कई दिन से रूठे हुए थे, आज मनाने का समय मिला, तो आप चट हाज़िर। राजकुमार, उन्हे जाने दो। डिप्टी-कलेक्टर है। रुपया नहीं है। सुंदर भी नहीं है। महेशचन्द्र सुंदर है। शांत है, किंतु भोले हैं। यह भी ठीक नहीं। प्रेमनाथ? सर्वगुण-संपन्न हैं। क्या सुंदर गोल मुँह है। गालों पर ललाई है। कैसी आँखें हैं। क्या सुंदर मन है। क्या पुष्ट शरीर है। हाथों में शक्ति होते हुए भी कठोरता नाम को भी नहीं। कैसा गोरा रंग है, मानो European हैं। सुहासिनी, अगर तू प्रेमनाथ को अपने रूप-जाल में, प्रेम-जाल में आबद्ध न कर सकी, तो यह रूप किस काम का? प्रेमनाथ! क्या सुहासिनी के जाल से बच कर चले जाओगे। दो को तो फाँस लिया। वे दोनो मेरे आज्ञाकारी दास है। तुम्हे भी वैसा बनाके न छोड़ा, तो मेरा नाम सुहासिनी नहीं।

सुहासिनी सगर्व अपना मुख दर्पण मे देखने लगी।

[४]

प्रेमनाथ का आना-जाना होने लगा। सुहासिनी भी उन्हे अपने कौशल-जाल में फँसाने लगी। प्रेमनाथ भी अनबूझ की भाँति फँसने लगे। फँसने लगे सुहासिनी की समझ में। किंतु उसकी मीठी प्रेम-बातों पर हँसते मन-ही-मन में।

पूर्णिमा का चाँद अवलोकते हुए सुहासिनी ने कहा— प्रेम

वावू, तुम आजकल वहुत गभीर रहते हो।"

प्रेमनाथ ने हॅसने का प्रयत्न करते हुए कहा--गभीर, गभीर कहॉ रहता हूॅ, और अगर गंभीर रहू भी, तो वह भी तुम्हारी कृपा है।"

सुहाहिनी ने मद मुस्कराते हुए कहा—"वह कैसे!"

प्रेमनाथ—"यही कि मै तुम्हे देखे विना एक क्षण भी नहीं रह सकता।"

सुहासिनी ने जाना कि उसके स्वर्ण-जाल मे पक्षी फॅस गया। उसने आश्चर्य के साथ मुॅह वनाकर हॅसते हुए कहा—"धन्य भाग्य! मैं समझी थी कि आप मुझसे घृणा करते हैं।"

प्रेमनाथ ने और भी आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"घृणा! सहासिनी! और तुमसे? असभव! सुहासिनी, मुझे पागल न किए दो। ठहरो, मैं पागल हो जाऊॅगा।

सुहासिनी ने मुस्कराते हुए एक वकिम कटाक्ष-सहित कहा—"वाह, मैं तम्हे पागल वना सकती हू। क्या तुम मेरे पीछे पागल हो जाओगे?"

प्रेमनाथ ने कहा—"नहीं तो क्या तम हो जाओगी। सुहासिनी, मै तमसे ।"

सुहासिनी ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—"क्या कहा प्रेम वावू?"

प्रेमनाथ ने कहा—"साहस नहीं पडता कि मैं कहू। मुझे अभय दो सुहासिनी कि तुम रुष्ट न होगी।"

सुहासिनी ने व्रीडावती बालिका की भाँति कहा—"मै तुमसे रुष्ट होऊँगी प्रेम! कभी नहीं। तुम जो चाहो, कहो।"

प्रेमनाथ ने अपने घुटनो को टेकते हुए कहा—"सुहासिनी, बोलो, निराश तो नहीं करोगी। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। यदि प्रेम करना अपराध हो, तो क्षमा करना। मैं इसी अपराध का अपराधी हूँ। सुहासिनी, मैं तुम्हारे सामने बैठा हूं। दंड दो।"

सुहासिनी ने अपना हाथ देते हुए कहा—"मेरे प्रेम! मेरे आराध्य!! उठो मैं भी तुम्हें चाहती हूँ। मै तुमसे प्रेम करती हूँ। आज मेरे मन की वासना सफल हुई। प्रेम तुमको पाकर मै सब कुछ पा गई। तुम मेरे हो सके, संसार मेरा हो गया।"

इसी समय फूलबाग की घडी ने टन-टन सात बजा दिए।

प्रेमनाथ ने उस निभृत निकुंज में सुहासिनी को अपने हृदय से लगा लिया। सुहासिनी भी सप्रेम उनसे लिपट गई। दोनों एक दूसरे का अधरामृत पान कर रहे थे।

सहसा पिस्तोल का शब्द हुआ, और प्रेमनाथ तथा सुहासिनी दोनों भूमि पर गिर पडे! एक व्यक्ति दौडता हुआ आया, और प्रेम को सुहासिनी से अलग करते हुए कहा—"हा! इस बेचारे की मृत्यु निरर्थक हुई।' फिर उसने सुहासिनी की ओर देखकर कहा—"पापीयसी, प्रतारणा का फल मिला। विश्वासघात किया था।" यह कह उसने सुहासिनी के मृत शरीर को पैर से ठुकराकर अलग कर दिया।

उस व्यक्ति ने नोट-बुक निकालकर अपने फाउंटेन पेन से चांदनी के प्रकाश मे लिखा—"मैं राजकुमार, इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मैने सुहासिनी और प्रेमनाथ को पिस्तौल से मारा है। इसीलिए स्वय मै भी आत्महत्या किए लेता हू, जिस से लांछित होने से बच जाऊँ।"

पिस्तौल मारनेवाला व्यक्ति राजकुमार था।

राजकुमार ने उस दिन इस आशय का पत्र पाया था—"आज कृपा कर सध्या सात बजे फूलबाग मे टावरक्लाक के सामने वाले निकुज मे मिलो। वहाँ एक विचित्र घटना देखने को मिलेगी।

राजकुमार आज सध्या ही से आए हुए थे। उन्होने सुहासिनी को प्रेमनाथ के साथ आते देखा था। फिर उसी कुज मे जाते देखा था, जिसका ज़िक्र पत्र मे था। वह उत्सुक होकर देखने लगे कि मामला क्या है। उन्होने सब सुना। जब आगे सह्य न हो सका, पिस्तौल मार दी। पिस्तौल केवल सहासिनी को मारी थी, किंतु गोली सुहासिनी का वक्षस्थल बेधती हुई प्रेमनाथ को भी लग गई। प्रेमनाथ ने भी गोली की पिपासाशात कर दी।

राजकुमार ने स्वीकार-पत्र लिखकर, पिस्तौल की नली अपने मुख मे रखकर मार ली। एक तृतीय मृत शरीर भी भूमि पर लोटने लगा।

पिस्तौल का शब्द सुनकर बहुत-से व्यक्ति दौड आए। आने-

चाल में महेशचंद्र भी थे। महेश बाबू ने भी इसी आशय का पत्र पाया था। किंतु महेश बाबू ने कुछ ध्यान न दिया था, फिर भी वह घूमते हुए चले ही आए। सहसा दो पिस्तौल के शब्द सुनकर वह शीघ्रता से निकुंज की ओर दौड़े। जो दृश्य उन्होंने देखा, वह कल्पनातीत था। सुहासिनी, प्रेमनाथ और राजकुमार को मृत देखकर वह स्तंभित रह गए। शीघ्रता से प्रेमनाथ के शव के पास जाकर देखा कि गोली छाती पार कर गई है, किंतु साँस अब भी आती है। वह जल को चिल्लाने लगे।

कई मनुष्य दौड़कर जल ले आए।

प्रेमनाथ के मुख पर वह शीघ्रता से जल डालने लगे। कुछ समय बाद उनको होश आने लगा।

प्रेमनाथ ने अपने नेत्र खोलते हुए कहा—"मैं कहाँ हूँ? याद आया। सुहासिनी कहाँ है? क्या उसको भी गोली लगी? महेश कहाँ है?"

महेश ने रुँधे गले से कहा—"मैं यहीं हूँ प्रेम! सुहासिनी अच्छी है। कैसी तबियत है?"

प्रेमनाथ ने कहा—"गोली तुमने मारी थी महेश! छि! कैसा खराब काम किया। मैंने तुमसे कह दिया था कि एक दिन सुहासिनी को अपने अब-पाप में दिखा दूँगा। वही दिखाने के लिए आज तुमको और राजकुमार, दोनो को बुलाया था। तुमने मुझे गोली मारी महेश! तुमने मेरा प्राण ले लिया! मैं अपना प्राण देकर तुम्हारे आगे क्या, संसार के आगे उदाहरण रखता हूँ कि

रमणी का प्रेम तृष्णा है, लालसा है, और कुछ नहीं। महेश, क्षमा करो ।"

महेश ने चिल्लाकर कहा—"मैंने नहीं गोली मारी प्रेम ! गोली मारनेवाला राजकुमार था।"

किंतु किसने उसके ये शब्द सुने ?

प्रेमनाथ की अंतरात्मा गमन कर चुकी थी !

———

जब मैं दुबारा पान लेने चली गई थी।" यह कहकर वह विजय-हँसी हँसने लगी।

मैं अपनी मूर्खता पर पछताता रहा, उस वक्त मै क्यों हँसा ? हाय !

[२]

यमुना का नील सलिल देखते हुए कहा—"क्या यह सुख स्वप्न सदा यों ही बना रहेगा ? क्या इसी भाँति हम दोनों एक दूसरे को यों ही प्यार करते रहेंगे ? क्या इसी तरह ये सुख के दिन हमेशा कटते जायँगे ! क्या वह कभी मुझे छोडकर चली जायगी, या मै कभी उसे छोड कर . . . ! अह, मन काँप उठता है। शरीर शिथिल हो जाता है। प्राण भयाकुल हो जाते हैं। भगवन् ! जब तक मैं जीऊँ, मेरे दिन इसी भाँति सुख से कटते जायँ। आपसे यही प्रार्थना है कि वह मुझ से कभी अलग न हो, और मै उससे अलग न होऊँ।"

मैं पुलकित मन से प्रार्थना कर रहा था विश्राम-घाट उस दिन नीरव था। केवल दो-चार को छोडकर घाट शून्य था। अपनी प्रार्थना मे तल्लीन था। सहसा बाजे की आवाज सुनकर मेरा पूजा-ध्यान सब उचट गया। मै उठकर खडा हो गया। धीरे-धीरे उस सगीत-ध्वनि की ओर बढा। घाट के ऊपर ही एक बडा सुंदर मकान बना हुआ था। ध्वनि उसी के एक कमरे से आ रही थी। मै नीचे खडा रहा। किसी ने मधुर ध्वनि से गाना शुरू किया—

ऊधो, प्रेम की का याही रीत ?
पहले प्रेम कियो फिर छिन ही मा भूले सब प्रीत
ऊधो, प्रेम की का याही रीत ?

मैं गाना सुनता ही रहा। उसमें तन्मय हो गया। मुझे चेतना तब हुई, जब एक नवयौवना बाला ने आकर कहा—"यहाँ कैसे खड़े हैं? ऊपर चलिए, अगर गाना ही सुनने की इच्छा है।"

मैंने अकचकाकर उस मनोहारिणी रूपसी की ओर देखकर कहा—"नहीं-नहीं, मैं यों हीं खड़ा हो गया था। माफ़ कीजिएगा, अभी जाता हूँ।"

यह कहकर मैं जाने पर उद्यत हुआ। मुझे जाते देखकर उस रूपवती ने मेरी ओर एक बंकिम कटाक्ष निक्षेप करके कहा—"आप जा क्यों रहे हैं, ऊपर चलिए न।"

न-जाने किस आकर्षण से मेरे मन में ऊपर जाने की इच्छा हुई, किंतु जाने में भी एक तरह का संकोच बोध हो रहा था।

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप खड़ा रहा। उसने एक बार फिर मेरी ओर देखकर कहा—"आइए, मैं लिए चलती हूँ।"

मैंने पूछा—"यह किसका मकान है ?"

बाला ने एक बार ताज्जुब के साथ देखा। उसने धीरे-धीरे कहा—"तो क्या आप विदेशी हैं ?"

मैंने केवल-मात्र कहा—'हैं।" बाला ने उत्तर दिया—"यह कोठी 'महारानीजी' की है।"

मैंने पूछा—"कौन महारानी, कहाँ की ?" उसने उत्तर कहा—"रानी रामेश्वरीदेवी, वल्लभगढ़ की।"

मैंने पूछा—"रानी क्या पर्दे मे नहीं रहतीं ?" बाला ने उत्तर दिया—"रानी बूढी हैं। वह सबको अपने पुत्र के समान प्यार करती है। सभी उन्हे मा कहकर पुकारने है।"

मैंने पूछा—"अभी गा कौन रहा था।

बाला ने उत्तर दिया—"वह रानी की एक परिचारिका है। रानी जी को गाना सुनने का बडा शौक है, इसलिये उन्होंने चार-पॉच गानेवाली रख ली है। चलिए, आइए ऊपर।"

मैं धीरे-धीरे उसके पीछे हो लिया।

एक सुसज्जित कक्ष मे रानी रामेश्वरीदेवी पलग पर बैठी थीं। मुझको देखकर वह उठ खडी हुईं, और एक मतलब-भरी दृष्टि से उस रूपसी बाला की ओर देखा। बाला ने कहा—"माजी, यह एक विदेशी सज्जन है, दरवाजे पर खड़े हुए केतकी का गाना सुन रहे थे। आपको गाना गाने और सुनने का बडा शौक है। ऊपर आने मे सकोच हो रहा था, इसीलिये मैं इन्हे लिवा लाई हूँ।" इतना कहकर वह सुंदरी मेरी ओर एक तिरछी दृष्टि से देख-कर धीरे-धीरे मुस्करा दी।

रानी जी ने कहा—"आओ बेटा, नीचे क्यो खडे थे। कोई मा के घर के बाहर खडा रहता है।"

मैंने कहा—"ऐसे ही खडा हो गया था। पहले मुझे मालूम नहीं था कि यह 'मा' का घर है, नहीं तो मैं जरूर ऐसी देवीस्व-

रूपा मा की चरण-धूलि लेकर अपने को कृतार्थ करता।"

रानीजी ने हँसते हुए कहा—"आओ, बैठो।"

मै धीरे-धीरे जाकर नीचे फर्श पर बैठ गया।

रानी रामेश्वरी देवी की आयु लगभग ५० वर्ष की होगी। बाल सफेद हो गये थे, किंतु मुख पर अब भी प्रौढता के चिह्न अवशेष थे। बातचीत से बडी खुशमिजाज मालूम होती थीं। उनका रङ्ग पक्का था, और गठन अब भी खूबसूरत थी। उन्होंने मेरी ओर एक बार देखकर पूछा—"क्यो बेटा, तुम कहाँ रहते हो?"

मैंने उत्तर दिया—"कानपुर मे।"

रानीजी ने पूछा—"शुभ नाम?"

मैंने उत्तर दिया—"शिवनाथ सिनहा।"

रानीजी ने पूछा—"यहाँ कैसे आये?"

मैंने उत्तर दिया—"यो ही घूमने की गरज से।"

रानीजी ने कहा—"अच्छा किया। यहाँ पर कब तक रहने का इरादा है?"

मैंने कहा—"यही चार-पाँच दिन।"

रानीजी ने कहा—"यहाँ पर कहाँ ठहरे हो?"

मैंने कहा—"तुलसी-चौरा में।"

रानीजी ने कहा—"खैर, जब कभी तुम्हे गाना सुनने की इच्छा हुआ करे, तब यहाँ चले आया करो।"

मैंने विनीत स्वर से कहा—"बहुत अच्छा, लेकिन मैं परसों

ही यहाँ से जानेवाला हूँ।"

रानीजी ने कहा "इतनी जल्दी। कोई मा के घर से इतनी जल्दी भागा जाता है।"

मैंने कुछ उत्तर न दिया धीरे-धीरे हँस दिया।

रानी ने फिर कहा "बेटा, तुम्हीं कुछ गाकर सुनाओ।"

मैंने एक लज्जा की हँसी हँसकर कहा "मै गाना नहीं जानता।" रानी मेरी ओर देखकर मुस्किराई।

एक नवयुवती रूपसी ने मुस्किराते हुए रानी जी से कहा मा, यह बिलकुल असभव बात है। जो गाना सुनने के लिये नीचे खडा रहता है, सुनते-सुनते उसमें लीन हो जाता है, भला वह स्वय न गाता हो?" यह कहकर, वह मेरी ओर देखकर एक कटाक्ष-सहित मुस्कराई।

उस सु दरी ने जो मुझे नीचे से ले आई थी, कहा माजी जिस ढग से यह ताल के साथ अपना सिर हिला रहे थे उससे साफ जाहिर होता था कि यह सगीत-कला के उस्ताद है।" यह कह मेरी ओर देखकर वह हँस दी। रानी मा और सभी सु दरियाँ हँस पडीं। मै चुपचाप बैठा रहा।

एक दूसरी मनोहारिणी बाला ने मेरे सामने हारमोनियम रखते हुए बडे नाजोअंदाज से कहा "आपको गाना ही पडेगा चाहे जैसा हो।"

रानीजी ने भी कहा बेटा गाओ न यहाँ कौन शरम"

मैंने भी धीरे-धीरे हारमोनियम बजाना शुरू किया।

जिसने मेरे पास हारमोनियम लाकर रक्खा था उसने कहा

कोई वागेश्वरी सुनाइये मुझे बहुत प्रिय है।"

मैंने स्वर देकर धीरे-धीरे गाना शुरू किया

ऊधव प्रीति किए पछितानी।
हम जानी ऐसी निबहैगी उन कछु औरे ठानी,
कारे तन को कौन पत्यानो बोलत मधुरी बानी। ऊधव०
हमको लिख-लिख जोग पठावत आप करत रजधानी,
सूनी सेज श्याम बिन मोको तलफत रैन बिहानी। ऊधव०।

जिस समय मैंने गाना बंद किया सबकी आँखें मेरे मुख पर गड़ी हुई थीं। रानीजी ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा "तुम बहुत अच्छा गाते हो मेरे यहाँ इतनी हैं तुम्हारे बराबर कोई नहीं गा सकती।"

मैंने उठते हुए कहा "ऐसा ही थोड़ा-बहुत जानता हूँ।"

रानीजी ने मेरी ओर देखकर कहा "कहाँ"

मैंने खड़े होकर कहा "रात हो गई है। घर जाऊँगा। अँधेरे में तो रास्ता भूल जाने का डर है। अब आज्ञा दीजिये। समय मिला तो आपके दर्शन फिर करूँगा।"

जिसने मेरी ओर हारमोनियम सरकाया था उसने एक दर्द-भरी दृष्टि से देखकर कहा "अभी और बैठिये न। रानी मा आपको साथ कर देंगी फिर आप घर न भूल सकेंगे" यह कह उसने एक मनोहर कटाक्ष-सहित मेरी ओर देखा और फिर नजरा झुका कर लिया।

मैंने अब और ठहरना उचित न समझकर कहा "नहीं

ही यहाँ से जानेवाला हूँ।"

रानीजी ने कहा "इतनी जल्दी। कोई मा के घर से इतनी जल्दी भागा जाता है।"

मैंने कुछ उत्तर न दिया धीरे-धीरे हँस दिया।

रानी ने फिर कहा "बेटा, तुम्हीं कुछ गाकर सुनाओ।"

मैंने एक लज्जा की हँसी हँसकर कहा "मैं गाना नहीं जानता।" रानी मेरी ओर देखकर मुस्किराई।

एक ललगुलाती रूपसी ने मुस्किराते हुए रानी जी से कहा मा, यह बिलकुल असम्भव बात है। जो गाना सुनने के लिये जीते रहता है, सुनते-सुनते उसमें लीन हो जाता है, भला वह स्वय न गाता हो?" यह कहकर, वह मेरी ओर देखकर एक कटाक्ष-सहित मुस्कराई।

उस सुन्दरी ने जो मुझे नीचे से ले आई थी, कहा माजी जिस ढग से यह ताल के साथ अपना सिर हिला रहे थे उससे साफ जाहिर होता था कि यह सगीत-कला के उस्ताद हैं।" यह कह मेरी ओर देखकर वह हँस दी। रानी मा और सभी सुन्दरियाँ हँस पडीं। मैं चुपचाप बैठा रहा।

एक दूसरी मनोहारिणी बाला ने मेरे सामने हारमोनियम रखते हुए बडे नाजोअंदाज से कहा "आपको गाना ही पडेगा चाहे जैसा हो।"

रानीजी ने भी कहा बेटा गाओ न यहाँ कौन शरम"

मैंने भी धीरे-धीरे हारमोनियम वजाना शुरू किया।

जिसने मेरे पास हारमोनियम लाकर रक्खा था उसने कहा

कोई वागेश्वरी सुनाइये मुझे बहुत प्रिय है।"

मैंने स्वर देकर धीरे-धीरे गाना शुरू किया

ऊधव प्रीति किए पछितानी।
हम जानी ऐसी निबहैगी उन कछु और ठानी,
कारे तन को कौन पत्यानो बोलत मधुरी बानी। ऊधव०
हमको लिख-लिख जोग पठावत आप करत रजधानी,
सूनी सेज श्याम बिन मोको तलफत रैन बिहानी। ऊधव०।

जिस समय मैंने गाना बंद किया सबकी आँखें मेरे मुख पर गड़ी हुई थीं। रानीजी ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा तुम बहुत अच्छा गाते हो मेरे यहाँ इतनी हैं तुम्हारे बराबर कोई नहीं गा सकती।"

मैंने उठते हुए कहा ऐसा ही थोड़ा-बहुत जानता हूँ।"

रानीजी ने मेरी ओर देखकर कहा कहाँ"

मैंने खड़े होकर कहा रात हो गई है। घर जाऊँगा। अँधेरे में तो रास्ता भूल जाने का डर है। अब आज्ञा दीजिये। समय मिला तो आपके दर्शन फिर करूँगा।"

जिसने मेरी ओर हारमोनियम सरकाया था उसने एक दर्द-भरी दृष्टि से देखकर कहा अभी और बैठिये न। रानी मा आदमी साथ कर देंगी फिर आप घर न भूल सकेंगे" यह कह उसने एक मनोहर कटाक्ष-सहित मेरी ओर देखा और फिर अपना मुख नत कर लिया।

मैंने अब और ठहरना उचित न समझकर कहा "नहीं,

जाना ही होगा। अभी और बहुत-से काम करने है।"

उसने एक और वेदना-पूर्ण कटाक्ष निक्षेप करके कहा 'कल तो आइयेगा ?"

रानीजी ने कहा 'हाँ बेटा कल जरूर आना मुझे तुम्हारा गाना बहुत अच्छा लगा। इस घर को अपनी मा का ही घर समझना।"

मैंने विनम्र कंठ मे कहा—"जी हाँ समय मिलते ही आऊँगा।" यह कहकर मै धीरे-धीरे द्वार की ओर चला।

रानीजी ने उसी रूपसी से कहा 'केतकी जरा नीचे तक पहुँचा तो आ।"

मुझे मालूम हुआ, उस नवयुवती का नाम केतकी था। वह मेरे साथ-साथ चली। मैने रानी को प्रणाम किया और कमरे के बाहर हो गया। केतकी भी मुझसे कुछ न बोली और न मैंने कुछ कहा। दरवाजे पर आकर उसने मेरी ओर भरपूर दृष्टि निक्षेप करके कहा कल जरूर आइएगा चाहे जो कुछ हो जरूर आइएगा नहीं तो मुझे बड़ा कष्ट होगा। मेरे ऊपर दया करके आइगा। आइएगा अवश्य।"

मैं सकुचित हो गया। अकेले मे मुझे अन्य स्त्रियों से बातचीत करने का अभ्यास न था। मैने सिर नीचे किये हुए ही कहा—"हाँ-हाँ जरूर आऊँगा।"

मै दरवाजे से बाहर हो गया, और सीधे सड़क नापनी शुरू की। थोडी दूर जाकर पीछे की ओर देखा। क्यों देखा, कह

नहीं सकता, लेकिन देखा अवश्य कि केतकी अब भी दरवाजे पर खडी थी, और मेरी ओर एकटक देख रही थी। मुझे फिरकर देखते हुए देख वह मुस्करा दी। सभव है, वह मेरा भ्रम हो। लेकिन मुझे ऐसा जान पडा, मानो वह मुस्किरा रही है।

[३]

घर आकर प्रतिज्ञा की कि अब फिर कभी रानी के यहाँ न जाऊँगा। सोते वक्त, इसी समस्या पर विचार भी करता रहा, फिर प्रतिज्ञा की, न जाऊँगा। लेकिन जब सुबह हुआ, सोकर उठा—मुझे मेरी प्रतिज्ञा स्मरण हुई, किंतु अब मेरी प्रतिज्ञा की दृढता शिथिल-सी ज्ञात होने लगी। मेरे मन ने कहना शुरू किया—"जाने में, एक बार, शायद कुछ हर्ज नहीं है। मेरे न जाने से केतकी को कष्ट होगा। रानीजी ने भी आने को कहा है, अगर न जाऊँगा, तो वह क्या कहेंगी। एक बेर हो आने में हर्ज ही क्या है? आज ही जाऊगा। ज्यादा देर बैठूँगा भी नहीं। केवल दो घडी बैठकर चला आऊँगा।" किसी छिपी आवाज ने कहा—"तुम अपनी स्त्री के साथ विश्वासघात कर रहे हो।" मेरे मन ने कहा—"इसमे विश्वासघात कैसा? कहीं आने-जाने को क्या मना है।"

उसी आवाज ने फिर कहा—"वह प्रलोभन की जगह है, जहाँ प्रलोभन हैं, वहाँ मत जाओ। प्रलोभनों में फँसकर विश्वासघात कर सकते हो।"

मन ने कहा—"मैं तो उसे प्यार करता हूँ, जीवन से अधिक प्यार करता हूँ, फिर कैसे विश्वासघात कर सकूँगा। मैं कभी नहीं विश्वासघात करूँगा। उसी आवाज ने फिर कहा—"मेरा कहना मानो, मत जाओ।"

मन ने कहा—"अच्छा, तो न जाऊँगा।"

मैंने शय्या से उठकर फिर प्रतिज्ञा की—"न जाऊँगा।"

दिन-भर नाना प्रकार के कामों में, झगड़ों में अपने मन को फँसाए रहा, किंतु ज्यों-ज्यों संध्या समीप आती जाती थी, मेरी प्रतिज्ञा की दृढ़ता में भी शिथिलता आती जाती थी। मेरा मन बार-बार वहाँ जाने को उतावला हो रहा था। आखिर मन ही की जीत हुई। सब रोते-चिल्लाते रह गए। मैं विश्राम-घाट की ओर चल दिए। मैं भी अपनी इच्छा के विरुद्ध बरबस उसी ओर जाने लगा। रानीजी की कोठी के सामने आकर रुका। सोचने लगा, जाऊँ कि नहीं। मैं सोच ही रहा था कि ऊपर से किसी के खखारने की आवाज आई। मैंने सिर उठाकर देखा, ऊपर खिड़की पर केतकी खड़ी थी। उसके ओठों पर हँसी थी। मुख प्रफुल्ल था। हास्य-श्री से एक प्रकार की अपूर्व सुंदरता छाई हुई थी। उसने इशारे से ऊपर आने को कहा। अब मैं न रुक सका। मैं अंदर घुसा। जीने पर ही केतकी मुझे मिली। उसने एक अदा से मेरा हाथ पकड़कर घसीसटते हुए कहा—"आओ, मैं तो निराश हो गई थी, शायद तुम न आओ।"

उसने आज मेरे लिये तुम इस्तेमाल किया।

एक क्षणिक मोह मेरे ऊपर भी आ गया। उसके हाथ

पकड़ते ही एक अजीब तरह की गुदगुदी से शरीर रोमांचित हो गया। मैंने भी मुस्कराते हुए कहा—"तुमने इतना कहा था, और मैं न आता, यह भी कभी सभव था।"

उसने मेरी ओर एक लज्जा-भरी दृष्टि निक्षेप करके कहा—"खैर, आपकी मेरे ऊपर इतनी दया तो है। आइए, चलें, कमरे में बैठें।" यह कहकर वह एक तरह से मुझे घसीटते ही हुए कमरे में ले गई।

आज वह कमरा न था, जिसमें मुझसे रानीजी से मुलाकात हुई थी। आजवाला केतकी का निज का कमरा था। मुझे ले जाकर उसने पलग पर बिठा दिया, और स्वय मेरे बगल में बैठ गई।

न-मालूम एक तरह का कैसा भाव मेरे मन में आया। मैं सिहिर उठा। तो क्या सचमुच प्रलोभन है? मैंने उठते हुए कहा—"आज मुझे तुम कहाँ ले आई। कल तो मैं इस कमरे में नहीं आया था।"

उसने मेरा हाथ पकड़कर बिठाते हुए कहा—"यह आपकी दासी का कमरा है। क्या यहाँ पर बैठने में कुछ हर्ज?" यह कहकर वह मुस्करा दी।

मैं फिर सिहिर उठा। मैंने फिर उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं, लेकिन रानीजी कहाँ हैं? मैं उन्हीं से मिलने आया हूँ। कल जा रहा हूँ, इसीलिये आया हूँ कि मिल आऊँ, शायद कल वक्त मिले न मिले।"

उसकी कटीली आँखों में आँसू छलछला आए। उसने

कहा—"तो क्या तुम रानीजी से ही मिलने आए हो। मुझसे नहीं।"

मैंने दृढ़ स्वर में कहा—"हाँ।"

उसने अपनी आँखों के आँसुओं को अंचल से पोंछते हुए कहा—"रानीजी तो नहीं हैं, आज आरती देखने गई हैं। सभी गई हैं, केवल मैं नहीं गई, इसलिये कि तुम आओगे।"

मैंने कहा—"तो मैं जाता हूँ, रानीजी से कह देना कि मैं आया था।"

उसने एक आह-भरी चितवन से मेरी ओर देखकर कहा—"तो जाओगे, चले ही जाओगे, तनिक देर भी नहीं बैठोगे। बैठो, मेरे सामने बैठो, मैं कुछ नहीं चाहती, तुम्हें मैं सिर्फ देखना चाहती हूँ। जब से तुम्हें देखा है, तुम्हें प्यार करने लगी हूँ। तुम झूठ मानो चाहे, लेकिन मैं सत्य कहती हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। प्यारे, नाराज़ मत हो। यों मेरी ओर न देखो। तुम मेरे आराध्य हो, और मैं तुम्हारी दासी।"

यह कह उसने मेरे पैरों पर अपना सिर रख दिया। उसके आँसुओं की धार मेरे पैरों को भिगोने लगी। मैं थोड़ी देर तक निस्तब्ध खड़ा रहा। मैं उस समय अपने होश में न था। मैंने उसे उठाकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया। उसने भी अपना मुख मेरी छाती में छिपा लिया। मैं उसके बंधन-हीन कुंतल दामों पर हाथ फेरने लगा।

हाय रे मनुष्य की कमजोरी! तूने मनुष्य को क्यों इतना कमजोर बनाया।

मैंने धीरे-धीरे उसके मुख को अलग करते हुए कहा—"केतकी, बैठो, शांत हो। कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा? रानी जी ही कहीं आ गई, तो क्या होगा?"

हाय रे पापी मनुष्य! तुझे मनुष्य का इतना भय है!

केतकी ने और जोर के साथ चिपटते हुए कहा—"कोई न आवेगा, कोई न देखेगा। देख लेगा, तो कोई क्या कर लेगा? मैं तुम्हे न छोडूँगी। तुम्हें प्यार करती हूँ। न छोड़ूँगी।"

मैंने उसको अलग करते हुए कहा—"केतकी, पागल न बनो। मेरी बात भी तो सुनो। आओ, हम-तुम बैठकर बातें करें।"

केतकी मुझे घसीटकर पलग के पास ले आई, उस पर मुझे बिठाकर स्वय नीचे बैठ गई, और कहा—"कहो प्यारे, क्या कहते हो। मैं सब सुनूँगी।"

मैंने कहा—"पहली बात तो यह है केतकी कि मैं विवाहित हू। मेरे स्त्री है, और मेरे साथ है। मैं उस से कोई बात नहीं छिपाता। गोया अभी तक मैंने यहाँ के आने का हाल उससे नहीं कहा, लेकिन आज सब कह दूँगा। दूसरे, तुम भी स्वतंत्र नहीं हो, रानी की कृपा पर निर्भर हो। मैं तुम्हारा भरण-पोषण का भार नहीं ले सकता, क्योंकि मेरे पास इतने साधन नहीं हैं तीसरे, अभी तुम नवयुवती हो, हमारे-तुम्हारे सबध को ससार पाप-दृष्टि से देखेगा, और वास्तव में पाप है ही, मैं कहीं का न रहूँगा। चौथे, तुम्हारे साथ सबध रखने से मेरी स्त्री को कष्ट होगा, और उसके साथ विश्वासघात करना होगा, जो मुझे

स्वीकार नहीं है। इन्हीं सब बातों से अच्छा होगा कि हम में और तुम में कुछ सम्बन्ध न हो।"

मेरी बातें सुनकर केतकी ने मेरे पैरों पर अपना सिर रखकर कहा—"तुम अपनी स्त्री से कुछ न छिपाओ, उसके साथ विश्वासघात न करो। मैं स्वयं अमीर हूँ, मुझे धन की जरूरत नहीं है। रानीजी कभी मुझे नहीं हटा सकती, उन्हें मालूम ही नहीं होगा। आप की स्त्री मेरी बड़ी बहन है। उनसे कोई बात न छिपाओ। मैं तुम से कुछ नहीं चाहती, अगर चाहती हूँ, तो यह कि रोज एक दो घटे के लिये आकर दर्शन दे जाया करो। इसके सिवा मुझे और किसी चीज की चाह नहीं है। तुम्हें देखकर ही सब कुछ पा जाऊँगी प्राणेश्वर, प्रियतम।"

मैंने कहा—"लेकिन रानी जी क्या कहेंगी, जब मैं रोज़-रोज यहाँ आया करूँगा।"

केतकी ने आँखें नीचे किए हुए कहा—"उनको सब मालूम है, इसीलिए वह यहाँ आज नहीं है। उन्होंने मुझे अवसर दिया, जिसमें मैं तुम्हारा प्रेम पा सकूँ, तुम्हें बता सकूँ कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।"

मैंने किंचित भय-विह्वल कंठ से कहा—"तो रानी जी को सब मालूम है।"

केतकी ने हँसते हुए कहा—"हाँ, उन्हें सब मालूम है। मैंने सब कह दिया है।"

मैंने आश्चर्य के साथ कहा—"कैसी रानी हैं?"

केतकी ने हँसते हुए कहा—"बड़ी दयावान ! जब उन्होंने सुना, पहले तो मुझ पर नाराज हुईं, लेकिन जब मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की, तब हारकर इजाजत दे दी बोलो प्राणेश्वर, तुम इस अभागिनी को छोड़ तो नहीं दोगे ? मैं तुम्हारे लिये सब छोड़ सकती हूँ। क्या तुम मेरे लिए जरा-सा त्याग नहीं कर सकोगे ?"

मैंने धीरे-धीरे कहा—"लेकिन मैं तो यहाँ सर्वदा नहीं रहा सकता। छुटियाँ खतम हो जाने पर मुझे लौट जाना पड़ेगा ।"

केतकी ने कहा—"नहीं, मै तुम्हे कहीं न जाने दूँगी । तुम्हे नौकरी न करनी होगी । रानी जी से कह-सुनकर तुम्हे २००) रुपए महीने दिला दिया करूँगी । तुम्हे सिर्फ कुछ देर तक कभी-कभी उनकी लड़कियो को गाना सिखला देना पड़ेगा। बस, इतना ही करना पड़ेगा। बोलो, स्वीकार है ?"

मैंने कुछ उत्तर न दिया। अपना भविष्य सोचने लगा ।

केतकी ने कहा—"मेरी बहन से यह सब हाल कहना, अगर वह सतुष्ट नहीं, तो फिर मैं दूसरा इंतजाम करूँगी । मैं उनके पास जाऊँगी, उनसे कहूगी कि मैं तुम्हारा धन तुमसे छीन नहीं लेना चाहती, और न कभी छीनूँगी, लेकिन तुम्हारे धन को रोज-रोज मैं देखना चाहती हूँ। मेरा उस पर अधिकार यद्यपि कुछ नहीं है, लेकिन तुमम दया की कमी नहीं है, और यह एक तुच्छ प्रार्थना जरूर सुनेंगी । जब उनके पैरो पर सिर रखकर रोऊँगी, तब भी क्या वह नहीं मानेंगी ।"

फिर मैं चुप रहा, कोई उत्तर न दिया । वह धीरे-धीरे उठकर मेरे पास बैठ गई । अपना सिर मेरे कंधे पर रख दिया, और अधखुली पलकों से मेरी ओर देखने लगी । फिर उसने धीरे-धीरे कहा—"क्या सोच रहे हो प्रियतम ?"

मैंने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"कुछ नहीं, यही सोच रहा हूँ कि एक ही दिन में मेरे जीवन में कितना बड़ा अंतर हो गया । कल तक कुछ और था, और आज कुछ और हो गया ।"

केतकी ने अपना सिर मेरी गोद में रखते हुए कहा—"प्यारे, कुछ न सोचो, तुम्हें छोड़ूँगी नहीं । तुम्हें छोड़ने का जी नहीं होता । इतने सुंदर तुम क्यों हुए, और फिर इतना कठोर हृदय लेकर कैसे आए ?"

मैंने कहा—"केतकी !"

केतकी ने मेरी ओर देखा । उसकी दृष्टि से प्रेम उमड़ा पड़ता था ।

केतकी ने मुझे आवेग से आलिंगन कर लिया ।

[४]

कहते हैं, दुखी को घर में शांति मिलती है, लेकिन यह बात कहाँ तक ठीक है, मैं नहीं जानता । मैं घर आया, और सिर पर एक बड़ा भारी बोझ लेकर आया । केतकी का रूप मुझे घसीट रहा था, और इधर कर्तव्य और धर्म—उधर तृष्णा और इधर प्रेम । उधर लालसा और इधर अनुराग । उधर आसक्ति और इधर स्नेह । कहाँ जाऊँ ? मैं स्वयं नहीं जान सका । मैं

पागलों की भांति झूमते हुए घर आया । उसने मेरी ओर एक डरी दृष्टि डालकर कहा—"आज ऐसे ! झूमते हुए क्यों आ रहे हो ? कहीं क्या आज छान आए हो ?"

हाय ! हिंदू-घर की भोली रमणी ! तुझे कैसे मालूम हो सकता है कि तेरा स्वामी कौन-सा भयानक पाप-कर्म कर आया है।

मैंने उन्मत्त की भांति बढ़कर उसे अपने आलिंगन-पाश मे बद्ध करते हुए कहा—"बोलो, तुम मुझे प्यार करती हो ?

वह चौक पडी। उसने मेरी ओर एक अजीब तरह से देखा। उस दृष्टि मे तिरस्कार था । उसने किंचित शुष्क स्वर में कहा—"आज यह कैसी बात ? हैं, तुम्हारे मुख से दुर्गंध कैसी तुम शराब पी आए हो ? शराब पी कर मेरे पास आए हो ?"

मैंने और अधिक बल से उसे आबद्ध करते हुए कहा—बोलो तुम मुझे प्यार करती हो ?"

उसने क्रोध से अपना मुख फेरते हुए कहा—"मैं एक शराबी को प्यार नहीं कर सकती।"

मैंने उसे छोड दिया। उसके मुख की ओर देखते हुए कहा—"अगर तुम एक शराबी को प्यार नहीं कर सकती, तो मैं उस के पास जाऊँगा, जो एक शराबी को अपने सिर-माथे पर बिठावेगी, जो मुझे जान से बढ़कर प्यार करेगी । जानता था कि तुम मुझे प्यार करती हो, लेकिन मेरी

थी, जो मैं यह समझता था। ख़ैर, आज वह भ्रम दूर हो गया। अब मैं स्वतन्त्र हूँ। स्वाधीन हूँ। किसी तरह का भार मेरे ऊपर नहीं है। कोई कर्तव्य नहीं है। जो मुझे प्यार ही नहीं करता, उसके प्रति कर्तव्य कैसा? तुमने आज मुझे मुक्ति दी, इस के लिये मेरे आंतरिक धन्यवाद ग्रहण करो।" मैं और कुछ कहना चाहता था, लेकिन गला सूखने के कारण नहीं कह सका। मैं सुराही से पानी ढाल-कर पीने लगा। वह मेरी ओर एकटक देखती रही, किंतु उसने कोई उत्तर न दिया। पाषाण-प्रतिमा की भांति सुनती रही।

पानी पीकर फिर स्वस्थ हो गया। नशे का झोंका फिर सिर पर सवार हुआ। तैश में कहने लगा—"सुनो, आज से मैंने पाप-मार्ग की ओर अग्रसर होना शुरू किया है। मैं जानता हूँ कि यह पाप-मार्ग है, लेकिन अपने को रोक नहीं सकता। मेरा पतन इतनी शीघ्रता से हुआ कि मैं कह नहीं सकता। अभी चार घंटे पहले मैं बिलकुल पवित्र था, पाप-कीट का प्रवेश नहीं हुआ था, किंतु इन्हीं चार घंटों में मेरे में बहुत अंतर आ गया है। मैं अब शराबी, मतवाला, विश्वासघातक और क्या कहूं, सब कुछ हो गया हूँ। पाप करने के पहले मैं जानता था, यह पाप है, किंतु प्रलोभन, इतने ज़बरदस्त प्रलोभनों ने अपनी ओर घसीटना शुरू किया कि मुझ में वह शक्ति नहीं रह गई थी, जिस से मैं पाप-पुण्य का विचार कर सकता। मैं उनकी ओर बढ़ा,

और बढा एक बारगी। मै चरित्र के ऊँचे शिखर पर से फिसला, और फिसलकर गिरा एकदम से उस पाप के भयानक कालिमा-मय गड्ढे मे, जहाँ से अब निकलना असभव है। पाप कर चुकने के बाद मेरी सद्बुद्धि वापस आई, मै मन-ही-मन पछताने लगा। मै वहाँ से भागा। इस आशा से भागा कि यहाँ आकर शांति मिलेगी। तुमसे निष्कपट सब हाल कह दूँगा, तुम मुझे क्षमा करोगी। अपने प्रेम की प्रगाढ़ छाया से, अपने प्रेम के दृढ कवच से ढककर मेरी रक्षा करोगी। लेकिन अब वह आशा निराशा मे परिणत हो गई। सोचा था, अब और पाप न करूँगा। लेकिन अब मुझे बरबस ही अपनी इच्छा के विरुद्ध पाप-मार्ग की ओर अग्रसर होना पडेगा। मैं जानता था कि तम मेरी रक्षा करोगी, लेकिन तुमने मेरी रक्षा से अपना हाथ खींच लिया। अब मेरे लिये एक ही मार्ग खुला हुआ है, वह है पाप-मार्ग। वह मुझे आह्वान कर रहा है—मैं उसी ओर जाऊँगा, जहाँ मेरी इच्छा पूर्ण होगी, जहाँ मुझे सुख मिलेगा, आदर मिलेगा, वहीं जाऊँगा। तमने मुझे शराबी कहकर तिरस्कार किया है, मेरे आलिंगन को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखा है, इसलिये मै अब जाता हू।"

मेरे आवेश मे शिथिलता आ रही थी। पैर काँप रहे थे, स्वर भर्रा रहा था। नेत्रों से अग्नि निकल रही थी। मैं विवश हुआ जा रहा था। तंद्रा—एक अपूर्व प्रकार का आलस्य, जिसमे गुदगुदी भी थी, और थकावट भी थी, जिसमे आनद भी था, और कुछ कष्ट भी था—आ रही थी। नेत्र मुँदे जा रहे थे। मैं लड़खडाता हुआ पलग के पास पहुँचा, और उसी पर पड़ गया।

फिर नहीं जानता, उसके बाद क्या हुआ।

उसी निद्रा में मैंने स्वप्न देखना शुरू किया—मानो एक बडा मनोरम स्थान है। झाडियाँ और निकुंज बडी सुंदरता से काट-छाँटकर बनाए गए हैं। तरह-तरह के फूल फूले हैं। मै उसी में भ्रमण कर रहा हूँ। एक झाडी मे एक बडा विकराल काला साँप निकला। वह मेरी ओर बढा। मैं भागा, वह साँप भी मेरे पीछे-पीछे हो लिया। कुछ दूर जाकर किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। मैंने पीछे फिरकर देखा। सर्प न था, लेकिन केतकी दौडी चली आ रही थी। उसने आते ही मुझे हृदय से लगा लिया। मैंने भी आवेश से उसे आलिंगन-पाश मे बाँध लिया। किंतु ज्यों ही उसके मुख की ओर देखा, झिझका और हटा, वह केतकी न थी—यह वही सर्प था। अपनी लाल-लाल जिह्वा निकालकर बडी जोर से फुफकार मारी, और मुँह बढाकर काट लिया। उसके काटते ही मैं गिर पडा। पैर फट-फटाने लगा। मेरी नींद उचट गई। लेकिन सचमुच मै पैर फट-फटा रहा था। कमरे में अंधकार था। मैं शांत होकर चारपाई ` ` लगा। वह न थी। धीरे-धीरे उठकर पुकारा—"जागती हो या सो गई?"

कोई उत्तर न मिला। मैंने फिर कहा—"जरा लैंप जलाओ तो। सुनती हो या नहीं।" फिर भी कोई उत्तर नहीं। मन-ही-मन खीझता हुआ उठा। लैंप जलाया, देखा, वह खाली जमीन पर लेटी हुई है। अपना मुख घूँघट मे ढाँक लिया है। मै थोडी देर तक देखता रहा कि देखूँ कोई आहट जागने की मिलती है या

हुआ। उसकी तीखी और विष-भरी बातों ने मेरे हृदय को जलाकर खाक कर दिया। मैं मन-ही-मन ताव-पेच खा रहा था। मैं तो आया मनाने, न कि यह विकट अभिमान सहने—ऐसी जली-कटी और ऐसे विषमय व्यंग्य सुनने!

मैंने गुस्से से कहा—"तुम्हें इतना अभिमान है! अभिमान है अपने रूप का! मुझे तुम्हारी-जैसी बँदरियाँ बहुत मिलेंगी। अगर मरना ही है, तो मरो, जल्दी मरो, पाप छूटे।"

मैं गुस्से से आग होता हुआ आकर चारपाई पर लेट गया। मैं चुपचाप पड़ा रहा। वह भी चुप पड़ी रही। उसने न कुछ और कहा, और न मैंने। मैं उसकी मिलान केतकी से करने लगा। केतकी सुंदरी थी, और उससे अगर अधिक नहीं, तो कम भी नहीं। केतकी में एक अपूर्व मादकता थी, एक मतवालापन था, एक अल्हड़पन था, एक गुदगुदी पैदा करने वाली अजीब चीज़ थी, जो उसमें न थी। केतकी के बंकिम कटाक्षों में और उसके कटाक्षों में ज़मीन-आसमान का भेद था। यह भी चंचल थी, लेकिन वैसी नहीं, जैसी केतकी। केतकी मेरी आँखों में बड़ी सुंदर देख पड़ने लगी। मैं एक ही दिन में सब कुछ खो बैठा। जिसके प्रेम पर मुझे अभिमान, वह भी खो दिया। मैं नहीं जानता कि मैं क्या हो गया। मैं उस घड़ी को कोसने लगा, जिस घड़ी रानी जी के यहाँ गया था। विधाता को कोसने लगा, और अंत में कोसने लगा उसको। एक ही दिन में मैंने अपने को शैतान के हाथों में सौंप दिया! वह दिन कैसा था—कितना

भयानक था ! मैं अब सिहिर उठता हूँ । मै अपना भविष्य सोचते-सोचते सो गया ।

[५]

मैंने उसको दूसरे ही दिन छोटे भाई के साथ कानपुर भेज दिया । उसने मुझे भी साथ चलने को कहा, लेकिन मैंने यह कहकर टाल दिया कि अभी मुझे यहाँ काम है, तुम दोनों जाओ । रामनाथ और मेरी स्त्री दोनों चले गए । जाते समय वह मुझसे मिलने तक न आई । मै भी मिलने न गया । मैं बैठा हुआ था । वह जानेवाली थी कि इतने में रामनाथ ने आकर एक लिफाफा मेरे हाथ मे लाकर रख दिया । मैंने पूछा—"कहाँ से आया है ?"

रामनाथ ने कहा—"भाभी ने दिया है ।"

मैंने गभीर मुद्रा से कहा—"अच्छा, जाओ ।"

रामनाथ चला गया । मैंने खोलकर पढ़ा । उसने केवल दो लाइनें लिखी थी । वे ये थीं—"अगर आपको कभी किसी ऐसे की आवश्यकता आ पडे, जो आपको सांत्वना दे सके, अगर आपको कभी अपने किए पर पश्चात्ताप हो, अगर कभी आपका यह मोह टूट जाय, और आपको किसी ऐसे की आवश्यकता हो, जो आपको सुपथ की ओर ले जाय, तो मुझे एक वार याद कीजिएगा । यदि जीवित रही, तो आपको सहायता दूँगी, नहीं तो —बस । कलम रुकी जाती है ।"

नीचे कोई नाम न था। मै उस पत्र को पढकर एक श्लेष की हँसी हँसा। फिर उसे मिरोडकर खिडकी से बाहर फेंक दिया।

जब वह जाने लगी, तब मैं उठकर खिडकी के पास आकर खडा हो गया। वह धीरे-धीरे आकर गाडी पर सवार हुई। गाडी चल दी। उसने सिर निकालकर मेरी ओर एक दृष्टि-भर देखा, और फिर अपना मुँह छिपा लिया। मैंने उसी एक नजर मे देख लिया, उसकी आम की फॉक-जैसी ऑखों मे ऑसू भरे हुए थे। उन ऑसुओं को देखकर मेरा मन द्रवित हो गया। मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। मै बडी देर तक हतबुद्धि-सा खडा रहा। किन्तु केतकी की मद-भरी मूर्ति नयनों के सामने आते ही सब पश्चात्ताप दूर हो गए। केतकी, केतकी मेरे लिये सब कुछ हो गई।

मैं रुका नहीं। तनिक भी विचलित न हुआ। पाप की ओर बढता ही गया। जब तक मैं केतकी के पास रहता, तब तक मुझे आराम मिलता, और जहाँ उससे वियोग होता, वहीं पर नाना प्रकार की भावनाएँ मुझे घेर लिया करतीं। कभी उसकी याद आती, और कभी केतकी का सुदर मनमोहन रूप ऑखों के सामने नाचने लगता। जब मैं जाता, तब केतकी भी सब भूलकर मेरे साथ रहती। केतकी बजाती, मैं गाता, और कभी मैं बजाता, और केतकी गाती। मैंने रानीजी की दो कन्याओं को गान सिखाने का भार ले लिया था।

रानीजी ने देखते हुए भी न देखा। उन्होंने कुछ भी आपत्ति प्रकट न की, बल्कि सहर्ष गान सिखाने का भार मेरे ऊपर दे दिया। उनकी दोनों लड़कियाँ केतकी के कमरे में ही मुझसे पढ़ने आया करती थीं। एक घंटे बाद वे चली जाती, तब केतकी और मैं रह जाता। केतकी मुझे छोड़ कर एक पल-भर न जाती थी। जब तक मैं रहता, तब तक केतकी मेरे पास रहती। कभी-कभी रानीजी स्वयं उसके कमरे में आकर हम दोनों से बातें किया करतीं। केतकी की सहेलियाँ, जो वास्तव में केतकी की तरह ही वहाँ रहा करती थीं, कभी-कभी आतीं, और तब हम सबों में खूब हँसी-मजाक होता, छेड़खानियाँ होतीं, हँसी के फव्वारे छोड़े जाते, चुटकियाँ कसी जातीं। हँसी की ध्वनि से कमरे गूँज जाते। सब मिलकर जब मुझे बनातीं, तब केतकी मेरा पक्ष ग्रहणकर मेरी लज्जा दूर करने का यत्न करती। केतकी को मैं सचमुच प्यार करने लगा था, और शायद केतकी भी मुझे प्यार करती थी।

एक दिन हम और केतकी दोनों बैठे हुए थे। हम दोनों में प्रेमालाप हो रहा था। सहसा केतकी ने दोनों हाथ मेरे गले में डालकर कहा—"आज मेरी एक बात मानोगे? बोलो।"

मैंने आवेश के साथ कहा—"कहो केतकी! मैंने कौन-सी तुम्हारी बात नहीं मानी है?"

केतकी ने और प्यार प्रकट करते हुए कहा—"आज 'चपला' रानी जी के यहाँ आई थी।"

मैंने पूछा—"कौन चपला ?"

केतकी ने मधुर हँसी हँसते हुए कहा—"अरे, चपला—चपला को नहीं जानते! कलकत्ते की मशहूर रंडी।"

मैंने कहा—"तो रानीजी के यहाँ क्यों आई थी ?"

केतकी ने कहा—"ऐसे ही आई थी। रानी के यहाँ यह पहले नौकर थी। शायद मिलने आती होगी।"

मैंने पूछा—"अच्छा, आई थी फिर ?"

केतकी ने अपना मुख और समीप करते हुए कहा—"आज तक मैंने तुमसे कोई चीज नहीं माँगी, आज माँगती हूँ। देने को कहो, तो मैं कहूं। नहीं तो फिजूल में जबान डालने से फायदा ?"

मैं अपना अस्तित्व भूला जा रहा था। मैंने जोश के साथ कहा—"केतकी, तुम जो माँगोगी, वह सब मैं दूँगा। मेरी जान माँगो, वह भी तुम्हारे ऊपर न्यौछावर है। जो चाहो, सो मिलेगा। अगर अभी तक तुमने नहीं माँगा है, तो यह तुम्हारी भूल थी, और मेरी भी गलती थी, जो मैंने कुछ नहीं दिया।"

केतकी ने एक मनमोहन कटाक्ष-सहित कहा—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ मेरा प्रेम बाजारू प्रेम नहीं है। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि मैं स्वयं अमीर हूँ, लेकिन आज तुमसे एक प्रेमोपहार पाने की इच्छा है, इसीलिये ऐसा कह रही हूँ।"

मैंने अधीर होकर कहा—"कहो भी तो।"

केतकी मेरे पास से उठकर कमरे की मेज के पास चली गई। वहाँ से एक सुंदर केस लिए हुए आई, और उसको खोलते

हुए कहा—"ऐसा चद्रहार मुझे तुम ले दो।"

मैने चद्रहार को हाथ मे लेकर देखा। चद्रहार लैंप के प्रकाश मे चमक उठा। मुझे वह वडा कीमती जान पडा। मैंने धीमे स्वर में पूछा—"इसकी कीमत कितनी है?"

केतकी मेरे पास आकर बैठ गई। मेरे गले में हाथ डालते हुए कहा—"सिर्फ पच्चीस सौ।" मैं कीमत सुनकर मन ही मन सिहिर उठा। मेरे पास इतनी रकम न थी।

केतकी ने मेरे मन का भाव ताडकर साभिमान कहा—"रहने दो। लाओ रख दूँ। जिस की चीज है, उसे वापस कर दूँगी। मेरे भाग्य मे पहनना वदा नहीं है।"

मैंने मन ही मन झेंपकर कहा—"वाह! तुमने कैसे जाना, तुम्हारे भाग मे पहनना वदा नहीं है। मैं चाहे जैसे हो, तुम्हे लेकर पहनाऊँगा।"

केतकी ने फिर मेरे गले में हाथ डालकर कहा—"तुम्हे कष्ट होगा, रहने दो। न पहनने मे कुछ हर्ज थोडे ही है। मैं तुम्हे दुखी नहीं देख सकती।"

मैंने आवेश के साथ कहा—"मैं तुम्हे जरूर पहनाऊँगा। लाओ, देखूँ।"

केतकी ने सप्रेम मेरे कपोलों पर एक प्रेम-चिह्न अकित कर दिया। मैंने कह तो दिया कि मैं दूँगा, लेकिन मुश्किल आ पडी कि दूँ कहाँ से। मेरे पास उस समय रुपया न था। घर से इतनी वडी रकम कैसे मँगा सकता था। सोचते-सोचते मेरे खयाल मे

आया कि उसके कुछ गहने मेरे पास ही पडे हुए है। उनमे कुछ मरम्मत करवानी थी, इसीलिए उसने उन्हे मेरे पास डाल दिया था। मै उस दिन उदास मन से घर लौटा।

घर आकर देखा, मेरे घर के पुराने दीवानजी बैठे हुए है। मैं इन्हे 'मामा' कहा करता था। मैने हॅसते हुए कहा—"कहिए मामा साहब, क्या आप को भी तीर्थ-यात्रा की सूझी ?"

मामा ने भी हॅसते हुए कहा—"जब तुम-जैसे नौजवान तीर्थ-यात्रा करके पुण्य कमाए लेते हैं, तब हम बूढों को हवस क्यो न हो। बडी मालकिन से बाहर जाने की इच्छा प्रकट की, उन्होंने इजाजत देदी। सोचा कि कहॉ जाऊॅ। पहले काशी जाऊॅ, प्रयाग जाऊॅ, या मथुरा-वृन्दावन। फिर मुझे खयाल आया कि अभी तक तुम मथुरा में ही हो, चलो वहॉ ही हो आऊॅ।"

मैं मामा की चतुरता ताड गया। उस ने सब हाल मेरी मा से कह दिया है। मा ने मुझे दो-तीन पत्र लिखे थे कि चले आओ, लेकिन मैने हमेशा बहाने बनाकर टाल दिया था। अब दीवानजी मुझ पर पहरा देने आए हैं। मैने हॅसते हुए कहा—"अच्छा किया, चलिए भीतर।"

बगैर कुछ कहे-सुने मामा मेरे साथ हो लिए।

मैंने अपना ट्रंक खोलकर उसके गहने बाहर किए।

गहनों के बेचने से १५००) के लगभग आ सकता था। उस समय ५००) के करीब मेरे पास थे, अब कमी आ पडी ५००) रुपयों की। इनका कहॉ से प्रबंध हो।

मैंने मामा के पास जाकर कहा—"मामा, आप कितना रुपया साथ लेकर चले थे ?"

मामा ने मेरी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखकर कहा—"क्यों ?"

मैंने सिर खुजलाते हुए कहा—"मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है। तीन-चार दूकानदारों को देना है। आज मैं सोच ही रहा था कि घर को लिखूँ, लेकिन मेरी किस्मत से आप ही आ गए।"

मामा ने पूछा—"कितने रुपयों की जरूरत है ?"

मैंने लापरवाही से कहा—"यही कोई ५००) होने से काम चल जायगा।"

मामा ने कहा—"५००) रुपये ! मेरे पास इतने नहीं है। दो-तीन सौ है।"

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—'तीन सौ ही दे दीजिए।"

मामा ने कहा—"अच्छा, तो फिर कल देंगे।"

मैंने कहा—"जैसे आज वैसे कल। देना हो, तो दे दीजिए।"

मामा ने कहा—"तुम्हारा बडा लंबा खरच हो गया है। पहले तो तुम ऐसे नहीं थे।" मामा ने बडी मुश्किल से तीन-सौ रुपए दे दिए। अब चिंता रह गई शेष दो सौ की।

दूसरे दिन २३००) रुपए ले जाकर केतकी को देते हुए कहा—"यह लो केतकी, तुम चद्रहार मँगा लेना ?"

केतकी ने आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखा। फिर कहा—"यह क्या !"

मैंने शुष्क हँसी हँसते हुए कहा—"अपने चद्रहार के दाम।"

केतकी ने कहा—मैंने तो कहा था कि मुझे चद्रहार की जरूरत नहीं है, फिर क्यों ये रुपये ले आए! क्या मैंने रुपए माँगे थे! अगर तुम्हारी इच्छा हो, तो स्वय चद्रहार लेकर मुझे पहना दो, मैं रुपए नहीं लूँगी।"

मैंने रुपए रखते हुए कहा—"लो, यह २३००) हैं, शेप दो-सौ का एक-दो रोज में मै प्रबंध कर दूँगा। अभी मेरे पास इतने ही है, घर से मँगा कर दे दूँगा। तुम मँगा लो, और पहन लो।"

केतकी ने सादर बिठाते हुए कहा—"ये कहाँ से लाए ?"

मैंने कहा—"चाहे जैसे लाया हू, तुम्हारी साध तो बाकी नहीं रक्खी। जैसे तुम अपना सब कुछ भेंट करने में न हिच-किचाई, फिर मै तुम्हारी एक तुच्छ साध भी न पूरी करूँ, भला कैसे हो सकता है।" केतकी ने कुछ उत्तर न दिया।

उस दिन जब मैं घर लौटा, तो मामा ने कहा—"तुम कहाँ गए थे ?"

मैंने सकपकाते हुये उत्तर दिया—"यों ही जरा घूमने।"

मामा ने गभीरता-सहित कहा—"आज घर से चिट्ठी आई है, उसमे लिखा है कि वह बीमार है। तुम्हे बुलाया है, और मुझे भी आने को लिखा है। मेरा तीर्थ भी न हो सका।"

मैंने मन-ही-मन कहा—"यह नहीं कहते कि मुझे लिवाने आए हैं, यहाँ आकर उलटी-सीधी समझाते है।" प्रकाश मे कहा—

"तो आप चले जाइए, मेरा जाना तो हो नहीं सकता।"

मामा ने ताज्जुब-भरी नजरों से देखते हुए कहा—"यह कैसी बात? तुम्हारी वहू बीमार और तुम न जाओगे! जब से यहाँ से गई है, तभी से बीमार है। जब मैं आया था, तभी बीमार थी, लेकिन हालत इतनी शोक-जनक न थी, अब, मालूम होती है, हालत अवतर है।"

मैंने कहा—"इलाज तो होता है, फिर मेरे जाने से क्या फायदा? कुछ मैं अच्छा तो कर नहीं दूँगा?"

मामा ने उत्तर दिया—"हाँ, इलाज वरावर होता है, लेकिन तुम्हारे जाने से कुछ और ही वात है।"

मैंने कहा—"अच्छा देखा जायगा।"

दूसरे रोज मामा चले गए, और चले गए मुझ पर नाराज होकर। मैंने कुछ भी परवा नहीं की। केतकी के आगे एक मामा क्या, पचास मामा त्याज्य हैं। मैं उस समय पागल हो गया था। मैंने क्षण-भर को नहीं सोचा कि वह बीमार है। ... जब कभी जरा सा सिर में दर्द होता, तो मैं अधीर हो ता, और आज वह बीमार है, लेकिन मैं गया नहीं। मेरे हृदय को कुछ जरा-सा धक्का लगा जरूर, लेकिन वह थोड़ी ही देर में ठीक हो गया। वह बीमार है। दवा होती है। अच्छी हो जायगी। चिंता की कौन-सी वात! भगवन, तूने मनुष्य को इतना अपदार्थ क्यों वनाया! मनुष्य वड़ा कमजोर है। अवूझ है और है अंधा।

[६]

जो मनुष्य जितनी ही जल्दी जिस चीज को पाता है, उतनी ही जल्दी उसका मन उससे ऊब जाता। यह ससार का एक बड़ा सीधा और सरल नियम है। केतकी का जी अब मुझसे ऊबा-सा उठा। अब वह मेरे पास वैसे प्रेम से न बैठती, न वैसी बातें करती। उस प्रकार से जी खोलकर न हँसती। सदा छिटकी-छिटकी रहती। अब मझे देखकर उसके मुख पर हास्य की रेखा नहीं दौडती थी बल्कि उसका मुख भारी हो जाता। उसको मेरा आना खलता, और साथ-ही-साथ मेरे मन मे भी परिवर्तन हो रहा था। यद्यपि मैं जाता रोज ही, लेकिन वह जोश, वह हौसला, वे इच्छाएँ लेकर नहीं, जो लेकर मैं पहले जाया करता था। कभी मेरे दिल मे भी होता कि हटाओ, मारो गोली, लेकिन जो नियम बँध गया था, उसी मारे मैं जाया करता। इन दिनों में केतकी ने मुझ से कई फरमाइशें की थीं, और सभी बहुमूल्य, लेकिन मैंने उन्हें जिस तरह पूरा किया, वह मैं ही जानता हूँ। हाँ, कल का व्यवहार मुझे खटक रहा था।। कल केतकी को मैंने एक दूसरे नवयुवक के साथ बातें करते देखा था। मैं नहीं जानता कि वह कैसे आया। मुझे देखकर केतकी कुछ झिझकी, लेकिन फिर मेरी ओर हँसते हुए कहा—"आइए, आइए! यह बाबू साहब आज तुम्हारी तरह गाना सुनने चले आए थे।" मैं

जाकर धीरे धीरे बैठ गया, और फिर थोड़ी देर बाद चुपचाप उठकर चला आया। जब मैं जीने से उतर रहा था, तब केतकी के कमरे से हँसने का विकट शब्द सुनाई पड़ा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो केतकी और वह नवागतुक दोनो खूब जी खोलकर हँस रहे हैं। आज मैं ये ही सब बातें साफ-साफ कहने के लिये आया था। मैं केतकी के कमरे मे घुसा। केतकी बैठी हुई थी। मेरी ओर उसने देखकर भी न देखा। मैंने सप्रेम पुकारा—"केतकी!"

केतकी चौंक पड़ी। उसने रुक्ष स्वर मे कहा—"क्या है?"

कलवाली बात फिर मेरे मन ताज़ी हो गई। मैंने मन को दमनकर पूछा—"कल कौन आया था? वह सज्जन कौन थे?"

केतकी ने उत्तर दिया—"यहाँ के वह बड़े धनी हैं। नाम है उनका परमानद। उनकी कल से मैं नौकर हो गई।"

मैंने आश्चर्य के साथ कहा—'तुमने नौकरी कर ली!"

केतकी ने कहा—"हाँ, क्या करूँ! तुमसे कुछ आशा है ही नहीं। जब तक मुझमे यौवन है, तब तक तुम मेरे साथ हो, और जहाँ इसका ह्रास हुआ, वहाँ तुम भी चल दोगे। अपनी बुढाई के लिये तो कुछ इतजाम करना होगा। तुमसे कोई चीज माँगो,' फौरन् मुँह लटक जाता है। तुम गरीब हो, तुम मेरा भार नहीं ग्रहण कर सकते। जब मैंने यह देखा, तब क्या करू, मुझे दूसरा उपाय करना पड़ा।"

उसकी एक-एक बात मेरे दिल मे चुभ गई। मैंने किंचित्

शुष्क स्वर में कहा—मैंने कब तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं की? जो तुमने माँगा, वही दिया, तमने पहले मुझे पाप में घसीटा, और जब मैं डूब गया, तब स्वयं भागी जाती हो।"

केतकी ने सतेज कहा—"मैंने तुम्हें कभी नहीं घसीटा, तुम स्वयं घसिट आए। अगर तुम चरित्र के ठीक होते, तो मैं क्या हजारों केतकी तुम्हें पथभ्रष्ट न कर सकती थीं। तमने स्वयं पैर बढ़ाए, इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है।"

मैंने अब अपनी गलती समझी। मैंने कहा—"तो तुम मुझसे अपना सब संबंध तोड़ रही हो।"

केतकी ने कहा—"वह तो तुम्हीं समझ सकते हो। जब मैंने दूसरे की नौकरी कर ली है, तब भला कैसे किसी दूसरे की हो सकती हूँ।"

मैंने कुछ व्यग्य से कहा—"तो यही तुम्हारा प्रेम था।"

केतकी ने हँसते हुए कहा—"हम लोगों में क्या कभी प्रेम होता है। अगर कभी प्रेम की-सी कुछ भावना होती है, तो वह मोह होता है, तृष्णा होती है, लालसा होती है, क्षणिक आसक्ति होती है। हम लोग नहीं जानतीं कि प्रेम कि रुचिडिया का नाम है। प्रेम का ढोंग जरूर जानती है, लेकिन प्रेम नहीं।" यह कह कर वह जोर से हँस दी।

मैंने मन-ही-मन चिढ़कर कहा—"तो तुम क्या वेश्या हो?"

केतकी ने साश्चर्य देखकर कहा—"अभी तक तुम यह भी न जान पाए! नहीं जानते कि यह वेश्याओं का अड्डा है।"

मैंने और आश्चर्य के साथ पूछा—"और रानीजी !"

केतकी ने हँसते हुए कहा—"रानी ! कहाँ की रानी। वह हम लोगों की माँ हैं। हम सबों को वह अपने फन में ठीक कर रही हैं। चपला हम लोगों की बहन है, वह पास हो गई। पास का सार्टिफिकेट लेकर कलकत्ते चली गई। अब मैं भी शीघ्र ही कहीं जानेवाली हूँ।"

मैं अब अपने गुस्से को सँभाल न सका। बड़े गुस्से से कहा—"तो यह सब तुम लोगों की दगाबाजी थी। रानीजी महज एक नकली रानी थीं।"

केतकी ने हँसते ही हुए कहा—"और नहीं तो क्या सच-मुच। तुमको इतनी अक्ल न थी, कि सोचते कि अगर सच-मुच रानी होती, तो एक परिचारिका के प्रेमी के हाथ अपनी दो लड़कियाँ सौंप देती, और वह सब देखती हुई भी कुछ न कहतीं। भगवान् ने तुम्हें इतनी भी बुद्धि नहीं दी।"

यह कहकर वह हँस दी। उसकी हँसी मेरे घावों पर नमक छिड़क रही थी। मैंने तैश में कहा—"केतकी !"

केतकी ने जवाब दिया—"जनाब, यहाँ पर लाल-पीली आँखें न कीजिए। मैं नहीं सह सकती। दिखाइए जानकर अपनी उस साध्वी घर की लक्ष्मी को, जिसको मेरे लिये ठुकरा दिया था। जो आदमी तुच्छ रूप के लिये अपनी परिणीता को छोड़ सकता है, भला कब सम्भव है कि वह मेरा सदा बना रहेगा। तुम्हें देखकर मेरे मन में कुछ इच्छा हुई थी। जो आग जली

थी, वह अब शांत हो गई। अब तुमसे मेरा कुछ सबध नहीं है। आप अपना रास्ता देखिए, और मै अपना। बस, आदाब-अर्ज है बाबू शिवनाथ सिनहा साहब।"

मैं कुछ न कहकर उठ खडा हुआ, और अपनी मूर्खता पर सोचता हुआ चला आया।

घर आकर दो-तीन दिन तक तमाम बातें सोचता रहा। उसके पास जाने मे लज्जा से मेरा सिर नीचा हुआ जा रहा था। सोचता कि कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ। अब उसके सामने कैसे चार आँखें कर सकूँगा।

एक रोज मैं ये ही सब बातें सोच रहा था कि एकाएक एक तार आ पहुँचा। तार खोलकर पढा। लिखा था—"जल्दी आओ। बहू की तबियत बहुत खराब है।" अब मेरे पास सोचने-विचारने का समय न था। उसी वक्त बोरिया-बँधना बाँध स्टेशन को रवाना हो गया।

तमाम रास्ते में मुझे चैन न मिली। रास्ते-भर यही सोचता आया कि उसे मैं देख पाऊँगा या नहीं। बार-बार अपने को धिक्कारता कि मैं ही उसकी मृत्यु का कारण होऊँगा। अगर, ईश्वर न करे, वह चल बसी, तो मा को कैसे मुँह दिखाऊँगा। मामा क्या कहेंगे? इसी प्रकार की चिंता मे डूबा मै अधीरता से कानपुर-स्टेशन को देख रहा था। आखिर वह दिखाई दिया। मेरी जान मे कुछ जान आई। स्टेशन से बाहर निकलकर, ताँगे पर सवार होकर, घर का पता बताकर जल्दी से

ले चलने को कहा।

घर पहुँचकर देखा, सभी जगह सन्नाटा छाया हुआ है। मेरे प्राण सूख गए। मैंने व्यस्तता से घर के अंदर घुसते हुए पुकारा—"रामनाथ!"

मेरी मा ने व्यस्तता से दरवाजे खोलकर कहा—"कौन? मन्ना!"

मेरा घर का नाम मन्ना ही है।

मैंने प्रणाम करते हुए कहा—"हाँ, मैं ही हूँ?"

मा मुझे देखकर रो पडी। मेरे प्राण और सूख गए।

मैंने व्यग्रता से पूछा—"कैसी तबियत है?"

मा ने कुछ उत्तर न दिया। मैंने फिर पूछा—"सब लोग तो अच्छे हैं?"

मा ने कहा—"तुम्हीं जाकर देखो।"

मैं तेजी से आगे बढा। पीछे से मामा ने पुकारकर कहा—"उस कमरे में मत जाना, वहू सो रही है, तुम्हारे जाने से जाग पडेगी, तबियत फिर खराब हो जायगी।"

मै रुक गया। मेरे जान मे जान आई। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया। चलो, अभी वह जिंदा तो है। मै अपने कमरे मे घुसा। वहाँ जाकर, कपडे वगैरह उतारकर बैठा ही था कि मामा हाथ मे हुक्का लिए आ पहुँचे। मुझसे कहने लगे—"कहो, तीर्थ-यात्रा समाप्त हो गई?"

मैंने विरक्ति-पूर्ण स्वर मे कहा—"हाँ, अब कैसी तबियत है मामा!"

मामा ने गंभीर होकर कहा—"आज कुछ ठीक नहीं है। चाहे मर जाय, हालत तो मरने के करीब है। आज दिन-भर सब्र करो, कल सवेरे देखना। डाक्टर ने आज एक दवा पी दे, जिससे नींद आ जाय। इसी नींद पर सब मुनहसिर है। अगर नींद टूट गई, तो सब खत्म, और नींद आ गई, तो बस अच्छी हो जायगी।"

मैंने पूछा—"रोग कौनसा है?"

मामा ने सिर खुजलाते हुए कहा—"भाई, मुझे वह सब अँगरेजी नाम याद नहीं है। न-मालूम क्या बताया टाइट-पाइट, फाइट-पाइट, क्या जानें।"

मैंने कहा—"टायफायड तो नहीं।"

मामा ने कहा—"होगा, भाई वही। हम क्या जानें।"

मामा उठकर चले गए। मैं भी दूसरे कार्य में लगा। मेरे सिर पर से एक बोझ उतर गया।

❀ ❀ ❀

मैं शाम को ही खा-पीकर चारपाई पर लेट गया। पड़ते ही नींद आ गई। कुछ देर तक बड़े आराम से सोता रहा। स्वप्न देखा कि वह चारपाई पर बैठी हुई पैर दाब रही है। उसने मेरे सब अपराध क्षमा कर दिए है। स्वप्न देखते-देखते मैं जाग पड़ा। देखा, सचमुच वह बैठी हुई मेरे पैर दाब रही है। मैं उठ बैठा। मुझे विश्वास न हुआ। मैं अब भी सोच रहा था कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। मैंने आश्चर्य के साथ कहा—"कौन तुम?"

उसने मेरे पैरों पर अपना सिर रखते हुए कहा—"हाँ, मैं, मेरा अपराध क्षमा करो।"

मैंने उठाकर सप्रेम उसे कंठ से लगाते हुए कहा—"तुमने मेरे अपराध क्षमा कर दिए?"

वह मेरी ओर देखकर मुस्किराई—"हाँ, कर दिए। वे प्रलोभन थे, तुम प्रलोभनों में फँस गए थे। मैं जानती थी कि तुम्हारा मन कुछ दिनों में ऊब जायगा, तुम फिर मेरे हो जाओगे। ससार ही प्रलोभनमय है। तुम्हारा दोष नहीं।"

यह कहकर वह मुस्किरा दी।